श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—१८ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—१०-१२

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

आविर्भाव-शतवार्षिकी-स्मारक-विशेषाङ्क-२

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज
श्रीपाद रामचन्द्र दासाधिकारी
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज
श्रीयुक्ता उमा दासी, श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
डॉ. (श्रीमती) मधुखण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीप्रेमदास, श्रीसुबलसखा दास
श्रीसञ्जय दास,

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी

कार्यकारी सहायक—श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज, गौरराज दास,
विजयलक्ष्मी दासी, मधुकर दास, राधारमण दास

आभार—सुशील कृष्ण दास, शचीनन्दन दास

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

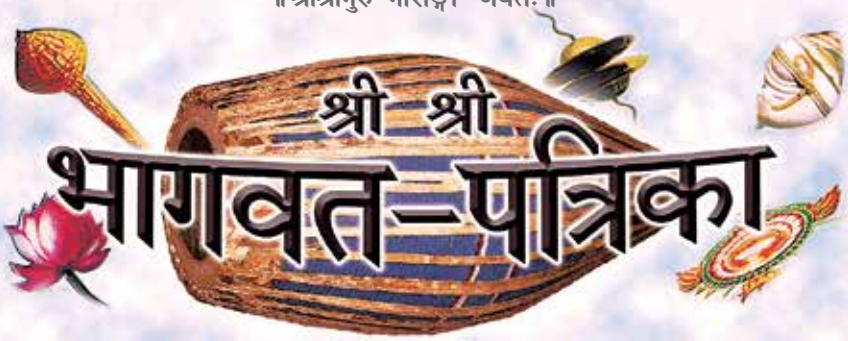

वर्ष १८

श्रीगौराब्द - ५३५
वि.सं. - २०७८; नारायण-गोविन्द मास;
सन्-२०२१-२२ (२९दिसम्बर- १८मार्च)

संख्या १०-१२

विषय-सूची

श्रीवामन-गुरुदेवाष्टकम् ३

ऐकान्तिक नामाश्रया भक्ति और श्रीभक्तिविनोद ५
ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीगुरुतत्त्व और श्रील प्रभुपाद ८
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद

दुर्बल, भीरु, कायरपुरुषके लिए भगवद्भजन नहीं है १३
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

सद्गुरु-सद्शिष्य १४
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

गुरुप्रेष्ठ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अप्राकृत गुणावलीका किञ्चित् संस्मरण २७
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

आचार्य पदपर अभिषिक्त होनेपर ४८
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज द्वारा श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको लिखित दो पूर्व-अप्रकाशित पत्र ५०

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी पत्रावलीसे संग्रहीत अमृतमय उपदेश-बिन्दु ५४

श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं चरणाश्रितजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलियोंसे उद्धृत अंश ६२

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत जीवनादर्शकी शिक्षाप्रद कतिपय मधुर एवं अलौकिक स्मृतियाँ और उपदेश-कण ८१

श्रील गुरुदेवकी अप्राकृत गुणावली १०६

श्रीवामन-गुरुदेवाष्टकम्

यतिकेशरि-केशव-शिष्यवरं यतिदण्ड-विभूषित-हास्यमयम्।
वरसौम्य-सुकोमल-मूर्त्तिधरं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ १॥

परिहृत्य गृहं शिशु-सौख्यमतिं हरिगौर-परात्पर-धामगतम्।
प्रभुपाद-कृपाशिष-धन्यकुलं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ २॥

खलु सज्जनसेवन-धर्मपरं सहजाद्भुत-वैष्णवताढ्य-तनुम्।
गुरुसेवक-सत्तम-दिव्यगुणं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ३॥

निगमागम-धारक-कोषतुलं सतत सतां शुचिमार्ग-चरम्।
भुवि केशव-गीत-महान्तसुरं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ४॥

परदुःख-विमोचन-यत्नयुतं छलधर्म-कुधर्म-तमिस्र-हरम्।
प्रणतेष्वपि वत्सल-सद्वरदं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ५॥

गुरुगौर-कथामृत-सिन्धु-निभं गुणधर्म-विमुक्त-विरागभरम्।
प्रभुरूप-पदाम्बुज-भक्तिपुरं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ६॥

निगमान्त-सभा-गुण-वृद्धिकरं गुरु-गोपति-काव्य-विकाशपरम्।
परमाश्रय-विग्रह-देववरं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ७॥

भवसागर-पार-पदाब्जतरीं व्रजधाम-रसाम्बुधि-दातृवरम्।
ललितालि-कुलानुग-यूथपरं प्रभजे प्रभु-वामनदेव-पदम्॥ ८॥

भवतोऽस्तु वचो मम सेव्यधनं तदिदं हि सुधीगण-कृत्यपरम्।
दिश देव पदाश्रय-भक्तिमयम् कुरु रूपगणे गणनामधमम्॥ ९॥

यतिगणोंमें सिंह-स्वरूप श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीके शिष्योंमें जो सर्वश्रेष्ठ हैं, संन्यास-दण्डसे विभूषित हास्यमय अत्यन्त सौम्य सुकोमल मूर्त्तिधारी उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें [भलीभाँति] भजन करता हूँ॥ १॥

जो बाल्यकालके सुख, शिशुमति(बालकबुद्धि) और गृहका परित्यागकर श्रीगौरहरिके सर्वश्रेष्ठ धाम—श्रीमायापुरका आश्रय करनेवाले हैं, जो समग्र कुल सहित प्रभुपाद

श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका कृपाशीर्वाद प्राप्तकर धन्य हुए हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ २॥

जो स्वभावतः हरिभक्त-सज्जनोंकी सेवाके प्रति निष्ठायुक्त हैं, जो सहजरूपमें छब्बीस प्रकारके वैष्णवगुणोंसे विभूषित मूर्ति हैं, गुरुसेवकके श्रेष्ठ दिव्यगुणोंसे अन्वित(ओतप्रोत) हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ३॥

जो वेद, उपनिषद्, पुराण आदिके धारणकारी कोष(अभिधान) सदृश हैं, जो सदैव साधुओंके द्वारा प्रदर्शित पवित्र मार्गपर विचरण करनेवाले हैं, जगत्में श्रीकेशव गोस्वामी द्वारा विघोषित महान्तदेव उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ४॥

जो जीवको कृष्णविमुखतारूप महादुःखसे मुक्त करनेके लिए प्रयासरत हैं, जो जगत्में 'धर्म' नामसे प्रचलित समस्त छलधर्म और कुधर्मरूप अन्धकारको हरनेवाले हैं तथा शरणागतके प्रति वात्सल्य भावसे युक्त एवं मङ्गल-वर-प्रदाता हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ५॥

जो गुरु-गौराङ्गके कथामृतके सागर-स्वरूप हैं, जो गुणधर्म-विमुक्त (विशुद्धसत्त्वरूप) विशेष रागसे पूर्ण हैं, जो प्रभु श्रीरूप-पदकमल-प्रणीत भक्तितत्त्वके पुर अर्थात् प्रसाद(भवन)-स्वरूप हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ६॥

जो श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी महिमाको बढ़ानेवाले हैं, जो गुरु-गोस्वामियोंके रचित ग्रन्थोंके प्रकाशनमें अत्यन्त निष्ठायुक्त हैं, जो परम आश्रयविग्रहके रूपमें परमदेवता हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ७॥

जिनके श्रीचरणकमल भवसागरको पार करनेके लिए नौकास्वरूप हैं, जो व्रजधाम-सम्बन्धित रससागरको प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, जो ललिताकी सखी श्रीराधिकाकी गोष्ठीके अनुगत यूथनिष्ठ हैं, उन प्रभु जगद्गुरु श्रीभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामीके श्रीचरणोंका मैं प्रकृष्ट रूपमें भजन करता हूँ॥ ८॥

हे नाथ! आपकी समस्त उपदेशावली मेरा सेव्यधन हो तथा वही सुधी जनोंके लिए श्रेष्ठ कृत्य है। हे देव! इस अधमको अपने भक्तिमय पदोंका आश्रय प्रदान करें एवं श्रीरूपके गणोंमें गणना करें॥ ९॥।

['श्रीगौड़ीय-स्तोत्र-रत्नमाला' से अनुदित]

ऐकान्तिक नामाश्रया भक्ति और श्रीभक्तिविनोद

ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

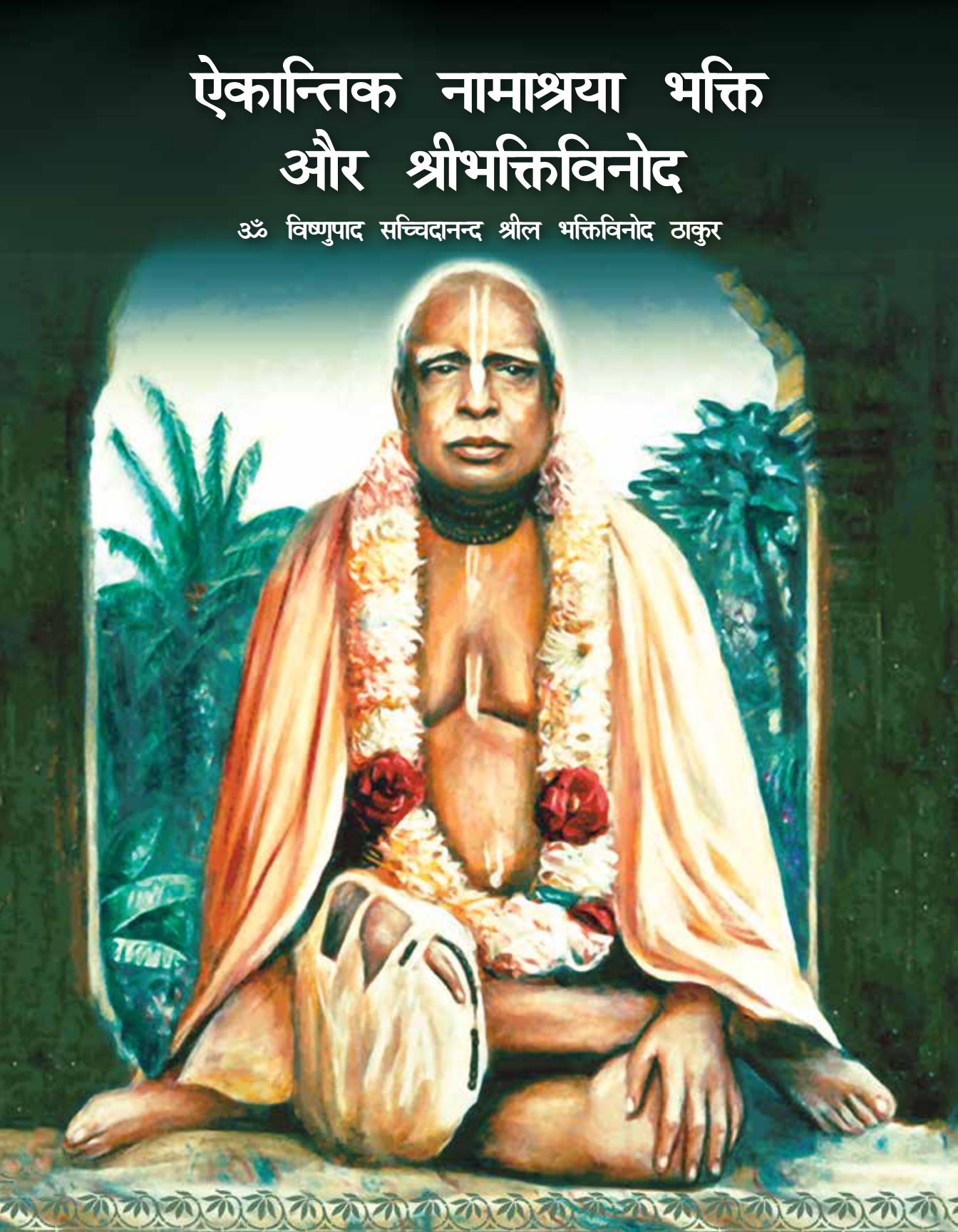

प्रश्न १—एकान्तभक्तका विश्वास कैसा होता है?

उत्तर—"कृष्ण ही एकमात्र रक्षाकर्ता हैं, उनके आश्रयके अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्यसे रक्षा नहीं हो सकती तथा उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षाकर्ता नहीं है—एकान्तभक्तका ऐसा विश्वास होता है।"

(चैतन्य शिक्षामृत ६/३)

प्रश्न २—व्यवहारिक दुःख उपस्थित होनेपर नामाश्रित भक्त क्या करते हैं?

उत्तर—"भक्ष्य आच्छादन यदि सहजे ना पाय।
अथवा पाइया कोन गतिके हाराय॥
नामाश्रित भक्त अविक्लवमति हञा।
गोविन्दशरण लय आसक्ति छाड़िया॥"

(भजन रहस्य चतुर्थ यामसाधन)

अर्थात् यदि भोजन और वस्त्रादि सहज रूपमें ही प्राप्त न हों, अथवा पाकर भी यदि किसी प्रकारसे वे वस्तुएँ खो जाती हैं, तो इससे नामाश्रित भक्तका चित्त विक्षिप्त नहीं होता। वह सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्यागकर गोविन्दकी शरण लेता है।

प्रश्न ३—क्या परा-मुक्ति तथा परा-भक्ति पृथक् तत्त्व हैं?

उत्तर—"मुक्ति तथा परा-भक्तिमें कुछ भी भेद नहीं है, अपितु जो इनमें भेद देखते हैं, तो यह समझना चाहिए कि उनको इन दोनोंमें-से किसीकी भी उपलब्धि नहीं है।"

(तत्त्व-सूत्र १९)

प्रश्न ४—ऐकान्तिकगण किन-किन भक्ति-अङ्गोंका याजन करते हैं?

उत्तर—"एकान्त कृष्णभक्तोंको श्रीकृष्ण-स्मरण तथा श्रीकृष्ण-कीर्तन ही अत्यन्त प्रिय होता है। वे प्रायः इन दो अङ्गोंके अतिरिक्त अन्य किसी अङ्गके पालनमें व्यस्त नहीं होते।"

(समालोचना, सज्जन तोषणी १०/६)

प्रश्न ५—नाम-साधकोंका किस विषयमें आग्रह होना आवश्यक है?

उत्तर—"जो नामसाधनका फल प्राप्त करना चाहते हैं, उनका तीन विषयोंमें आग्रह होना आवश्यक है—साधुसङ्ग, सुनिर्जन तथा अपना सुदृढ़भाव या पराकाष्ठा; इसे 'निर्बन्ध' कहते हैं।

(भजन-प्रणाली, हरिनाम चिन्तामणि)

प्रश्न ६—'निर्बन्ध' शब्दका क्या अर्थ होता है?

उत्तर—'निर्बन्ध' शब्दका अर्थ यह है कि साधक १०८ संख्यक तुलसीमालापर इस सोलह नाम बत्तीस अक्षरका जप करेंगे। चारबार माला घुमानेपर एक 'ग्रन्थ' होता है। एकग्रन्थका नियम बनाकर क्रमशः वृद्धि करते-करते १६ ग्रन्थ होनेपर एकलाख नामका निर्बन्ध होगा। क्रमशः तीन लाख करनेपर सारा समय नाममें ही व्यतीत होगा। समस्त पूर्व महाजनोंने प्रभुके इस आदेशका पालनकर सर्वसिद्धि प्राप्त की थी।"

(प्रमाद, हरिनाम चिन्तामणि)

प्रश्न ७—व्यवधान दोष क्या परित्यज्य है?

उत्तर—"नाम निरन्तर होना आवश्यक है—नामग्रहणके समय अन्य इन्द्रियोंकी क्रियाका व्यवधान आकर नाममें व्याघात न पहुँचाये।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति श्रीभाः मः माः १३/१५)

प्रश्न ८—नामग्रहणके समय साधककी चित्तवृत्ति कैसी होनी चाहिए?

उत्तर—"नाम ग्रहणके समय ऐसी आशा हमारे हृदयमें उदित होनी चाहिए; [हे प्रभु!] जिन पक्षी-बच्चोंके पङ्ख नहीं निकले होते, वे जिस प्रकार अपनी माताको

देखनेकी आशा करते हैं, जिस प्रकार बछड़े भूखसे व्याकुल होकर माताके स्तनपानके लिए प्रतीक्षा करते हैं, विदेश गये हुए प्रियतमके ध्यानमें जिस प्रकारसे उसकी प्रिया उदास होकर रहती है, मेरा मन भी उसी प्रकारसे आपके दर्शनोंकी लालसामें व्यग्र हो।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति, श्रीभाः मः माः १०/१६)

प्रश्न ९—क्या नामाश्रित व्यक्तियोंको कर्म-ज्ञान-सम्मत प्रायश्चित्त करना चाहिए?

उत्तर—"जिन्होंने नामका आश्रय ग्रहण किया है, उनके लिए कर्म-ज्ञान-सम्मत अन्य कोई प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति, श्रीभाः मः माः १३/१७)

प्रश्न १०—ऐकान्तिक नामाश्रयकारी व्यक्तिका आचार-प्रचार कैसा होना चाहिए?

उत्तर—"काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः प्रकारकी चित्तवृत्तियोंसे ही पाप होते हैं। जिन्होंने एकान्त भावसे नामका आश्रय ग्रहण किया है, वे किसी प्रकारका पाप नहीं करते। कृष्णकथामें तथा कृष्णसेवामूलक वैष्णवसंसारमें कामको नियुक्त करनेके कारण वे परस्त्रीसंग्रह, प्रयोजनसे अधिक धनसंग्रह, प्रतिष्ठाके लिए तत्परता, वञ्चना तथा चोरी इत्यादि दुष्ट कर्म नहीं करते। कृष्ण-वैष्णवविद्वेषीके प्रति क्रोधको नियुक्तकर बहिर्मुख संसर्गको दूर करते हैं, अतएव परपीड़न तथा प्रतिहिंसारूप क्रियाओंसे दूर रहते हैं। क्रोध वहाँपर वृक्षके धर्मकी भाँति सहिष्णुतामें परिणत हो जाता है। लोभको कृष्णरसास्वादनमें नियुक्त करनेके कारण अच्छा खाना-पहनना, सुन्दरी स्त्रीसङ्ग तथा अनावश्यक अर्थ सञ्चयके प्रति उनकी लेशमात्र भी स्पृहा नहीं होती। मोहको चिद्-रसमें नियुक्त करनेके कारण वे कृष्णलीलाके सौन्दर्य तथा वैष्णवचरित्रके प्रति मोहित हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वे धन-जन तथा जड़-सुख आदिमें मोहको प्राप्त नहीं होते तथा असत्-सिद्धान्तके प्रति मोहित होकर मायावाद या नास्तिक्यवाद तथा कुतर्कप्रियता इत्यादिमें मनोनिवेश नहीं करते। मदको कृष्णदास्य अभिमानमें नियुक्तकर जातिमद, धनमद, रूपमद, विद्यामद, जनमद तथा बलमदको दूर कर देते हैं। मात्सर्य अर्थात् परहिंसाके द्वारा अपने उत्कर्षको स्थापित करनेकी चेष्टाका पूर्णरूपसे त्याग कर देते हैं। ऐसे नियमित जीवनमें पापका उदय नहीं होता, अपितु पापवृत्तिका निर्मूल नाश हो जाता है। तथापि यदि कभी किसीके द्वारा किसी घटनाक्रमसे कोई पाप हो जाता है, तो वह पाप बिना किसी प्रायश्चित्तके ही नष्ट हो जाता है।"

(नामबले पापवृत्ति एक नामापराध, सज्जन तोषणी ८/९)

प्रश्न ११—क्या मतवादके द्वारा कपटताका आश्रय लेनेवाला नामसाधक-ध्रुव व्यक्ति प्रेम प्राप्त कर सकता है?

उत्तर—"जिस प्रकार औषधि तथा मन्त्रकी शक्तिको न जाननेपर भी रोगीको फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार नामकी शक्तिको न जाननेपर भी जो नामका आश्रय ग्रहण करते हैं, वे अनायास ही नाम-फल प्राप्त करते हैं। मतवादके द्वारा कुसंस्कृत व्यक्ति जब कपटताका आश्रय ग्रहण करता है, तो नाम उन्हें कपटताके अनुरूप जो फल देनेकी शक्ति रखते हैं, वही फल प्रदान करते हैं। प्रेमादि उच्च फल प्रदान नहीं करते।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति, श्रीभाः मः माः १३/२४)

प्रश्न १२—प्रकृत व्रजवास क्या है?

उत्तर—"अप्राकृत भावके साथ निर्जनवास ही 'व्रजवास' है। संख्यापूर्वक हरिनाम करते-करते अष्टकालीय सेवा करनी चाहिए। समस्त देहयात्रा जिससे उसमें विरोधी न हो—ऐसी विवेचना करते हुए समस्त क्रियाओंको सेवानुकूलभावसे यथानुरूप करना होगा।"

(जैः धः ४०वाँ अः)

('श्रीभक्तिविनोद-वाणी-वैभव' नामक ग्रन्थसे अनुदित)

श्रीगुरुतत्त्व

प्रश्न १—सद्गुरुके क्या लक्षण हैं?

उत्तर—जिनका सर्वत्र भगवत्-दर्शन, भगवत्-सम्बन्ध-दर्शन, सर्वत्र गुरु-दर्शन होता है; जो तृणसे भी अधिक सुनीच, वृक्षके समान सहिष्णु, अमानी तथा मानद होकर निरन्तर हरिकीर्त्तनमें रत तथा तन्मय रहते हैं, ऐसे कृष्णप्रेष्ठ महापुरुषोंका सङ्ग तथा उनकी सेवाके द्वारा ही हमारे मङ्गलका मार्ग खुल सकता है। महाभाग्यके फलसे ऐसे सद्गुरु प्राप्त होते हैं। मायाके दासको गुरुके रूपमें सजाकर भोगबुद्धिके द्वारा गौरसुन्दरके निकट नहीं पहुँचा जा सकता। श्रीगौरसुन्दरके इस जगत्में प्रकटलीलामें न रहनेपर भी यदि निरन्तर निष्कपट साधु-गुरुके सङ्गमें रहा जाय, उनकी चित्तवृत्तिमें अपनी चित्तवृत्तिको dovetailed (संलग्न) कर सकें, उनकी इच्छाके साथ अपनी इच्छाको मिला सकें, यदि ऐसे कृष्णतत्वविद् श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें शरणागत हो सकें, उनके चरणोंमें पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर सकें, तो ऐसे उत्तम सङ्ग, सेवा एवं आनुगत्यके द्वारा ही हमारा मङ्गल हो जाएगा।

जो भगवान्को ठगनेके लिए माला-जपका अभिनय करते हैं या खूब चिल्लाते हैं, परन्तु प्रत्येक शब्दमें कृष्ण दर्शन, प्रत्येक उच्चारणमें साक्षात् गौरसुन्दरका दर्शन नहीं करते हैं, हमें ऐसे तथाकथित गुरुका सङ्ग नहीं करना चाहिए। समस्त पाण्डित्यकी अन्तिम सीमा कृष्ण-सम्बन्ध है। यदि गुरुके आनुगत्यमें हमारी भगवान्की सेवाकी चित्तवृत्ति उदित होती है, तब समग्र जगत्को हम भगवान्की सेवाके उपकरणके रूपमें देखेंगे। जगतकी समस्त वस्तुओंके द्वारा भगवान्की सेवा करेंगे, तभी हमारा मङ्गल होगा।

और श्रील प्रभुपाद

प्रश्न २—दीक्षागुरु और शिक्षागुरु किसे कहते हैं? चैत्यगुरुका क्या कार्य है?

उत्तर—गुरु तीन प्रकारके होते हैं—दीक्षागुरु, शिक्षागुरु और चैत्यगुरु। गुरु कदापि लघु नहीं होते, गुरु ईश्वर वस्तु हैं। गुरुके प्रति लघुज्ञान करके उन्हें श्रीकृष्णचैतन्यसे पृथक् मानना उचित नहीं है। कृष्ण ही गुरुके रूपमें जीवोंकी चेतनताको उद्‌बुद्ध करते हैं, उनका वास्तविक मङ्गल विधान करते हैं।

दीक्षागुरु दिव्यज्ञान अर्थात् पूर्णवस्तुका ज्ञान प्रदान करते हैं। कृष्ण ही मेरे नित्य प्रभु हैं, मैं कृष्णका नित्यदास हूँ—यह दिव्यज्ञान अथवा सम्बन्धज्ञान दीक्षागुरु ही प्रदान करते हैं। दीक्षागुरु मन्त्र और भजन-उपदेश प्रदान करते हैं।

शिक्षागुरु अनर्थ-निवृत्तिका उपाय बतलाते हैं और उसके पश्चात् शुद्धभजनकी शिक्षा प्रदान करते हैं। दीक्षागुरु ही अधिकांश स्थलपर शिक्षागुरुका कार्य करते हैं। बद्धजीव दीक्षागुरु और शिक्षागुरुका कार्य नहीं कर सकता। हृदयविहारी अन्तर्यामी श्रीहरि ही चैत्यगुरु हैं।

कृष्ण यदि कृपा करेन कोन भाग्यवाने।
गुरु-अन्तर्यामी रूपे शिखाये आपने॥

(श्रीचै॰च॰ मध्य २२/४७)

अर्थात् श्रीकृष्ण यदि किसी भाग्यवान जीवपर कृपा करते हैं, तब वे साक्षात् गुरु तथा अन्तर्यामी—इन दो रूपोंमें स्वयं उसे शिक्षा देते हैं।

दीक्षागुरु और शिक्षागुरु जो विचार कहते हैं, चैत्यगुरु उन उपदेशोंको ग्रहण एवं धारण करनेकी शक्ति और योग्यता प्रदान करते हैं। चैत्यगुरुकी कृपाके बिना कोई भी दीक्षागुरु और शिक्षागुरुके विचारोंको समझ अथवा हृदयङ्गम नहीं कर सकता। चैत्यगुरु अर्थात् अन्तर्यामीकी कृपा अथवा सहायताके बिना महान्तगुरु (दीक्षागुरु एवं शिक्षागुरु) के उपदेशोंको नहीं समझा जा सकता, उनकी कृपा नहीं प्राप्त की जा सकती, चित्तकी मलिनता दूर नहीं हो सकती एवं श्रवणीय विषय कार्यकारी नहीं होता। भगवान् श्रीगौराङ्गदेव ही स्वयं दीक्षागुरुके रूपमें दिव्यज्ञान और शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं, स्वयंसे अभिन्न शिक्षागुरुवर्गको जगतमें भेजकर उस भक्तिका संरक्षण करते हैं एवं स्वयं ही चैत्यगुरु होकर सेवोन्मुख जीवके हृदयमें उस दीक्षा और शिक्षाको ग्रहण करनेकी शक्ति सञ्चारित करते हैं।

प्रश्न ३—किस गुरुका आश्रय ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर—जो सब समय हरिभजन करते हैं, जो सौ-में-से सौ भाग ही भगवान्‌की सेवामें नियुक्त हैं, सौभाग्यवान होनेपर ही ऐसे गुरुका चरणाश्रय प्राप्त होता है। अतः यदि हमें ऐसे गुरुका चरणाश्रय प्राप्त न हो, तो हम उनके आदर्शके अनुसार शत प्रतिशत भगवान्‌की सेवामें रत नहीं हो सकते।

अनाचारी वाक्यसार वक्ता (platform speaker) अथवा व्यवसायी पुरोहित (professional priest) गुरु नहीं हो सकते। दुर्भाग्यवशतः ऐसा गुरु प्राप्त होनेपर हरिभजन नहीं होगा, उनसे हमारा मङ्गल नहीं होगा। गुरु निष्काम, जितेन्द्रिय, शास्त्रज्ञ तथा भगवान्‌की अनुभूतिसम्पन्न होना चाहिए। शास्त्र कह रहे हैं—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयः उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा॰ ११/३/२१)

प्रश्न ४—श्रीगुरुपादपद्मका स्वरूप क्या है?

उत्तर—श्रीगुरुदेव साक्षात श्रीहरि हैं। किन्तु ऐसा कहनेका अर्थ यह नहीं है कि वह भोक्ता भगवान् हैं। श्रीगुरुदेव कृष्ण होकर भी कृष्णप्रेष्ठ हैं। चिद्विलासके विषय भगवान् हैं और चिद्विलासके आश्रयमें जो श्रेष्ठतम् हैं, वही श्रीगुरुपादपद्म हैं। एकमात्र मुकुन्दप्रेष्ठ श्रीगुरुपादपद्मके अतिरिक्त इस जगत्में भगवान्का प्रियतम और कोई नहीं है। गुरु दस-पाँच नहीं, एक हैं। गुरु कृष्णके परिकर, पार्षद अथवा कृष्णसङ्गी हैं। परिकरके बिना भगवान्की भगवत्ता स्वीकृत नहीं होती। परिकर-वैशिष्ट्यके बिना भगवद्-विद्रोह उपस्थित होता है। श्रीगुरुपादपद्म भगवद्वस्तुसे पृथक् वस्तु नहीं हैं। गुरुपादपद्म एवं गुरुवन्द्य भगवद्-पादपद्म एक होनेपर भी इनमें परस्पर वैशिष्ट्य विद्यमान है। वन्द्य, वन्दनकारीसे पृथक् नहीं हो सकते। गुरुका गुरुत्व नश्वर है अथवा गुरुपादपद्म उपायमात्र हैं, उपास्य नहीं हैं अथवा नित्य सेव्य नहीं हैं, यह अभक्तोंका विचार है। भगवद्वस्तु श्रीगुरुदेवके प्रति इस प्रकारकी जड़बुद्धि अथवा अनित्य बुद्धि होनेपर नरकगामी होना पड़ेगा। कृष्ण ही कृष्णको प्रदान कर सकते हैं। गुरुदेव ही कृष्णको प्रदान करते हैं। कृष्णप्रदाता श्रीगुरुपादपद्म गोलोक-वृन्दावनमें नित्य अवस्थित हैं। वे कालसे पूर्व भी थे और बादमें भी चिरदिन रहेंगे। जो स्वयं नित्यकाल गुरुपादपद्मकी सेवा नहीं करते, वे गुरुदेव नहीं हो सकते हैं। गुरुदेव स्वयं आचरण करके गुरुसेवा और कृष्णसेवाकी शिक्षा प्रदान करते हैं। जो जीवन-मरण, अनन्तकालके लिए कृष्णसेवा करते हैं, वही गुरुदेव हैं। गुरुका प्रत्येक कार्य भगवान्की पूर्ण सेवा होता है। भगवान् होना गुरुका कार्य नहीं है, भगवत्-द्रोही होना नितान्त लघुका कार्य है। श्रीगुरुदेव कदापि अवैष्णव नहीं हो सकते। वे भगवद्-अनुभूति-विशिष्ट एवं सेवाके तारतम्यके निर्देशनमें परमबुद्धिमान होते हैं। यदि भाग्यक्रमसे ऐसे महापुरुष गुरु रूपमें प्राप्त हो जायें, तभी हमारा मङ्गल होगा। जो गुरुदेव हमारे भोगकी वस्तुओंका अनुमोदन करते हैं, वे गुरु नहीं—चापलूस हैं। जो गुरु शिष्यका मङ्गल नहीं चाहता, वह शिष्यके सब विचारोंका अनुमोदन करता है। तुम जो कर रहे हो, वही ठीक है—इस प्रकारकी बात कहना गुरुका कार्य नहीं है, यह चापलूसका कार्य है। गुरु शिष्यका शिष्य अथवा उसकी चापलूसी करनेवाला नहीं है। वे भगवान्के चापलूस हो सकते हैं, क्योंकि भगवान् पूर्णवस्तु, सच्चिदानन्द वस्तु हैं, उनमें किसी प्रकारकी हेयता नहीं है। श्रीगुरुदेव नित्य अनर्थमुक्त, पूर्ण अर्थ हैं। भगवान्की शक्ति और उनके स्वरूपके विषयमें पूर्णज्ञान प्रदान करना ही गुरुका कार्य है। हमारे मङ्गलके लिए गुरुवर्ग इस प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते हैं। हमारे गुरुवर्ग नित्यसिद्ध हैं; वे साधनसिद्धमात्र नहीं हैं।

श्रीगुरुदेव नित्य पूज्य अथवा नित्यसेव्य वस्तु होकर भी भगवद्सेवाके मूर्त्त विग्रह हैं। श्रीगुरुदेव सेवाविग्रह, भक्तिविग्रह अथवा मूर्त्तिमान भक्ति हैं। गुरु कृष्णमय, निरन्तर कृष्णचिन्तामें विभोर रहते हैं। श्रीगुरुदेवके नाम, रूप, गुण, लीला, सभी सेवामय हैं। सेव्य भगवान्की सेवा ही उनकी सत्ता है, सेवा ही उनका स्वरूप, सेवा ही उनका गुण, सेवा ही उनकी लीला है। वे प्रेमसेवामें सुदक्ष एवं प्रेमभक्तिके शिक्षक हैं। श्रीगुरुदेव भवपारके कर्णधार अथवा नाविक, नामप्रेम-प्रदाता और भक्तिपथके प्रदर्शक हैं। वे नामाचार्य और सम्बन्धज्ञानाचार्य हैं।

प्रश्न ५—सद्गुरु क्या उपदेश देते हैं?

उत्तर—इस जगतमें उपदेष्टाओंका अभाव नहीं है। जगतके लोग कहते हैं—यहाँकी जो आवश्यकताएँ हैं, पहले उनमें विशेषरूपसे मन लगाओ। परन्तु उससे हितके विपरीत फल होता है—आवश्यकताएँ बढ़ती ही जाती हैं। सामयिक आवश्यकताओंको पूर्ण

करनेके प्रयासमें अनेक अभाव और असुविधाओंमें डूबना पड़ता है।

इस जगतमें आसक्तिके साथ वास या आसक्तिरहित होकर अति वैराग्यका प्रदर्शन, इन दोनोंमेंसे किसीसे भी मङ्गल नहीं होनेवाला। जगतमें बहुतसे ठग लोग साधुके वेषमें जीवोंको धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके लिए प्रेरितकर उन्हें तथाकथित धार्मिक बनानेमें व्यस्त हैं। ऐसे ठगोंके चंगुलसे छुटकारा पानेके लिए चतुर होना आवश्यक है और चतुर होनेके लिए श्रीचैतन्यदेवकी बातोंमें मनको लगाना होगा।

देवताओंके गुरु बृहस्पति ऐसा ही परामर्श देते हैं, जिससे देवताओंके भोगमें वृद्धि हो। बृहस्पतिकी बुद्धिकी प्रखरता और धर्मोपदेश भोगवृद्धिके लिए ही है। मनुष्यजातिमें भी अनेक अच्छे-अच्छे लोग परामर्शदाता हैं। कुलपुरोहित, समाजपति, देशपति, आत्मीय-स्वजन आदि समस्त लोग जो परामर्श देते हैं, वह केवल मानवजातिकी भोगवृद्धिके लिए है। जबकि वशिष्ठकी भाँति कुलगुरु निवृत्त-जीवनका परामर्श देते हैं। किन्तु वैष्णव-सद्गुरु एकमात्र हरिभजनके लिए परामर्श देते हैं। प्रवृत्ति या निवृत्ति उनके उपदेशकी अन्तिम सीमा नहीं है। वे प्रत्येक जीवके चिरस्थायी मङ्गलके उपदेष्टा हैं।

प्रश्न ६—सद्गुरु अपने आश्रितको क्या वस्तु देते हैं?

उत्तर—सद्गुरु अपने आश्रितको वैकुण्ठनाम प्रदान करते हैं। वे भगवान्‌के अभिन्न-मूर्ति और सेवकविग्रह हैं। इसलिए उनको मनुष्य समझकर उनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, अवज्ञा करनेपर महा-अपराध होता है।

वैकुण्ठ-शब्दसे वैकुण्ठ-शब्दी भगवान्‌का भेद नहीं है। जो नाम है, वही कृष्ण हैं—नाम और नामी अभिन्न हैं। वैकुण्ठनाम इस जगतकी वस्तु नहीं हैं। वैकुण्ठनाम दृश्य-वस्तु नहीं हैं, वे स्वयं द्रष्टा हैं।

कृष्णप्रेष्ठ सद्गुरु ही कृष्णको दे सकते हैं। वैष्णवगुरुके निकट ही कृष्णकथा श्रवणका सुयोग प्राप्त होता है। भक्तके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति भगवान्‌की कथा नहीं बोल सकते। कर्मी, ज्ञानी, योगी या जागतिक अध्यापकके निकट जानेपर मायाकी कथा श्रवण करनी होगी। ये लोग भगवान् विष्णुका नित्य अस्तित्व और सच्चिदानन्द-विग्रहत्व स्वीकार नहीं करते।

श्रीगुरुदेव अनुगत शिष्यको कृष्णनाम और कृष्णमन्त्र प्रदान करते हैं। जबतक गुरुमें मर्त्यबुद्धि रहेगी, तबतक हरिनामकी महिमा नहीं समझी जा सकती। कृष्णमन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ है। कृष्णमन्त्रसे अधिक श्रेष्ठ और असीम शक्तिशाली कुछ भी नहीं है। कृष्णमन्त्रमें सिद्धि होनेपर समस्त प्रकारके मनोधर्म समाप्त हो जाते हैं।

श्रीगुरुकृपासे श्रीगौरसुन्दर और व्रजधामका सन्धान प्राप्त होता है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही हम गिरिवर गोवर्धनको प्राप्त कर सकते हैं। कृष्ण ही एक मूर्त्तिमें गोवर्धन हैं। मनके धर्मसे युक्त होनेपर गोवर्धनका दर्शन पत्थरके रूपमें होता है। श्रीमती वार्षभानवी (वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका) जिस स्थानपर क्रीड़ा करती हैं, वह जड़ जगतकी मिट्टी-कीचड़से निर्मित वस्तु नहीं है, वह स्थान दिव्य चिन्तामणिमय है। श्रीश्रीराधामाधवकी अन्तरङ्ग सेवा प्राप्तिकी आशा जिनकी कृपासे मिलती है, वे ही श्रीगुरुदेव हैं।

श्रीगुरुदेवकी कृपासे हमारे समस्त अमङ्गल नष्ट हो जाते हैं और सब प्रकारसे मङ्गल होता है। मापनेका धर्म या जड़नीतिके द्वारा कृष्णको कदापि नहीं जाना जा सकता। एकमात्र केवला भक्तिके द्वारा ही उनको जाना जा सकता है तथा यह भक्ति भक्तश्रेष्ठ श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही प्राप्त होती है।

एकमात्र कृष्णकथा ही मूल्यवान् है। गोलोकका पाथेय (पथके लिए आवश्यक वस्तु) संग्रह करनेके

लिए कृष्णकथा ही आश्रय है। कृष्णकथा साक्षात् कृष्ण है। कृष्णकथाके अतिरिक्त अन्य किसी कथाका मूल्य फूटीकौड़ीका भी नहीं है। इसलिए जगतमें कृष्णकथाका विपुल प्रचार होना आवश्यक है। व्रजवासी श्रीगुरुदेवके श्रीमुखसे ही इस कृष्णकथाके श्रवणका सौभाग्य मिलता है।

प्रश्न ७—सद्शिष्यके विचार कैसे होते हैं?

उत्तर—गुरु ही जिनके जीवन हैं, गुरु ही जिनके आदर्श हैं, गुरुसेवा ही जिनका व्रत है, गुरु एवं कृष्णमें समान रूपसे प्रीतियुक्त होनेपर भी जो गुरुके अधिक पक्षपाती हैं, वे ही गुरुभक्त या सद् शिष्य हैं। सद् शिष्य दुर्बल नहीं होते, वे गुरुकी कृपाके बलसे बलवान होते हैं। गुरुकी कृपा या गुरुसेवा ही उनका बल या भरोसा है। सद्शिष्य प्राण जानेपर भी कभी भी गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते। श्रीगुरुदेव कृपापूर्वक उसे जिस सेवाका भार प्रदान करते हैं, उसे वह प्राण देकर भी पूरा करते हैं, इसीलिए वे गुरुकी कृपा भी प्राप्त करते हैं।

श्रीगुरुकी महिमा श्रवण करना ही हमारे लिए एकमात्र कर्तव्य है। मेरे गुरुदेव मुझे जैसे रहनेका निर्देश दें, उनकी आज्ञाको अपने सिरपर धारण करना होगा। इसके लिए यदि असुविधा भी हो, तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। जो कीर्तन करते हैं, वे ही गुरुपादपद्म हैं। मन देकर उनके द्वारा कीर्त्तित विषयका श्रवण तथा उनकी शिक्षाका अपने जीवनमें पालन करना होगा—यही सद्शिष्यका विचार होता है।

('श्रील प्रभुपादके उपदेशामृत' से अनुदित)

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र—१६)

दुर्बल, भीरु, कायरपुरुषके लिए भगवद्भजन नहीं है

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला, पोः-मथुरा (उः प्रः)
ताः—२७/१/१९६२

स्नेहास्पदेषु—

————महाराज! xxxx के विषयमें सुनकर बहुत दुःखी हुआ। '**वीरभोग्या वसुन्धरा**'—इसे स्मरण रखना आवश्यक है। माधुर्यरसके सेवकोंमें वीरताके अभावकी कल्पना उचित नहीं है। माधुर्यरस पूर्ण रस है, उसमें द्वादश रसोंकी ही अवस्थिति है। आवश्यकतानुसार सभी रस मधुररसके सेवकोंमें प्रकाशित हो पड़ते हैं। निष्क्रियता अलसताका प्रतीक है। *'श्रीहरि-सेवाय जाहा अनुकूल, विषय बलिया त्यागे हय भूल'* [अर्थात् जो हरिसेवाके अनुकूल है, उसे विषय जानकर त्याग करना भूल है] एवं श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे सम्बन्धित मात्र एक पैसेकी रक्षाके लिए एक लाख हत्याओंको प्रश्रय दिया जा सकता है—यह श्रील प्रभुपादके समान महापुरुषोंकी शिक्षा है।

'**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**'—उपनिषदके इस वाक्यका स्मरण करनेपर समझा जा सकता है—दुर्बल, भीरु, कायरपुरुषके लिए भगवद्भजन नहीं है। सहजिया लोगोंकी दुर्बुद्धिताके फलस्वरूप गौड़ीय-वैष्णवधर्म अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा प्रचारित विषयका लोप होता जा रहा है। हम लोग सहजिया लोगोंकी भाँति महाप्रभुकी कथाओंका प्रचार करनेमें किसी प्रकारकी दुर्बलता प्रकाशित नहीं करेंगे। हृदय दौर्बल्य हरिभजनमें प्रधान अनर्थ है। इससे परिमुक्त पुरुषगण ही प्रचारकार्यके सर्वोत्तम अधिकारी हैं। वे ही पृथ्वीको शिष्य बनानेके योग्य हैं। वीरताका लक्षण निष्पन्दन नहीं है। स्पन्दन चेतनका धर्म है।

हम लोगोंने श्रील प्रभुपाद तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके समान वीरपुरुषोंके वंशमें पारमार्थिक जन्म प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त हम सर्वोपेक्षा बलवान वीर श्रीमन् मध्वाचार्यके सम्प्रदायभुक्त होनेका दावा करते हैं। जो भीरु, कापुरुष, क्लीव, आलसी हैं, वे ही आजकलके बाबाजी, माताजी या जाति गोस्वामियोंकी भक्तिविरोधी चेष्टाओंका आनुगत्य करते हैं। हम सहजियागणोंके devotional blunder की पुनरावृत्ति नहीं करेंगे। 'तृणादपि सुनीचेन'की प्रकृत (वास्तव) व्याख्या—*'तबे लाथि मार तार शिरेर उपरे'*—श्रील वृन्दावन दास ठाकुरकी लेखनीमें पायी जाती है। श्रील नरोत्तम ठाकुरकी 'क्रोध भक्तद्वेषी जने'का स्मरण रखनेपर वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु हुआ जा सकता है। अधिक क्या, xxxके द्वारा प्रदत्त घर क्या हरिसेवामें नहीं लगेगा? इस पत्रको सबको पढ़कर सुनाना। इति—

नित्यमङ्गलाकांक्षी—
श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

(श्रीगौड़ीय पत्रिका—वर्ष-४१, संख्या-८ से अनुदित)

सद्गुरु–सद्शिष्य

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

(श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभ–आविर्भाव–तिथि,
८ फरवरी, १९८५ को श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें प्रदत्त हरिकथा)

आदर्श शिष्यका परिचय

श्रील गुरुदेवकी शुभ–आविर्भाव–तिथिपर उनकी महिमा–माहात्म्यका कीर्तन करनेकी ही रीति है—ऐसा सनातन शास्त्रोंमें प्रचलित है। "*वैष्णवेर गुणगान करिले, जीवेर त्राण।* [वैष्णवोंका गुणगान करनेसे जीवका संसार चक्रसे त्राण होता है]" "*छाड़िया वैष्णव–सेवा निस्तार पेयेछे केबा।* [वैष्णवोंकी सेवा किए बिना किसका उद्धार हुआ है?]"—शास्त्रोंमें ऐसी बातें लिखी हैं। श्रीगुरुदेवके उच्छिष्ट–भोजी सेवकका जीवन ही गुरु–सेवामय होता है। उनका चलना–बोलना सभी अनुष्ठान ही गुरुसेवा परायण हैं। ठीक इसी भावमें ही गुरुदेवतात्मा शिष्य या पूर्ण समर्पित सेवक गुरुसेवामें नियुक्त रहते हैं। मेरे श्रीगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुने अपनी गुरुसेवा–निष्ठाका विशेषरूपसे प्रदर्शन किया है। इस विषयमें मैंने अपने पूर्व–पूर्व गुरुवर्गोंसे श्रवण किया है और कहीं–कहीं उसे देखनेका सुयोग भी मुझे प्राप्त हुआ है। गुरुदेवतात्मा शिष्य अपने श्रीगुरुदेवको छोड़कर जो एक मुहूर्तके लिये भी जीवित नहीं रह सकते, यह मैंने मेरे गुरुपादपद्मके जीवनमें लक्ष्य किया है। उसी प्रकारसे श्रीगुरुदेवके एकनिष्ठ सेवकके रूपमें यदि हम इस जगत्में अपने अस्तित्वकी रक्षा कर सकें, तभी हमारा कल्याण होगा।

छोटा शिशु माँको छोड़कर और किसीको नहीं जानता है। जबतक चलना–फिरना नहीं सीखता है, उस अवस्थामें माँ ही उसकी एकमात्र Guardian होती है। वह उसको ही पहचानता और जानता है। जब भी कोई असुविधा होती है, विपदा–आपदा आती है, तभी वह–'माँ! माँ!' कहकर चिल्लाता है। गुरुदेवतात्मा शिष्य, गुरुके उच्छिष्ट–भोजी शिष्यकी भी ठीक ऐसी ही अवस्था होती है—इस बातको शास्त्रोंमें बतलाया और समझाया गया है। गुरु ही जहाँ एकमात्र सहारा, आश्रय हैं—उस आश्रयको छोड़कर एक विश्रम्भ सेवक अपने आपको ऐसा मानता है—मैं अभिभावकहीन, आश्रयहीन, निराश्रय हो गया हूँ। वह सोचता है कि, श्रीगुरुदेवने जब मेरे ऊपर आशीर्वाद किया है, मेरे प्रति शुभ–इच्छा रखी है, तब तो मैं निर्भय हो सकता हूँ। गुरु–निष्ठाके द्वारा ही वह व्यक्ति साधन–भजनके पथपर विघ्न–बाधाओंसे रहित होकर अग्रसर हो सकता है। ऐसा ही आदर्श मेरे श्रीगुरुपादपद्मने जगत्को दिखलाया है।

गुरुतत्त्व

हम प्रतिदिन सर्वप्रथम जिस गुर्वष्टकम्का कीर्त्तन करते हैं, उसमें भी यह पाया जाता है—

साक्षाद्धरित्वेन समस्त-शास्त्रैः
उक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणाविन्दम्॥

(श्रीगुर्वष्टक ७)

"*साक्षाद्धरित्वेन समस्त-शास्त्रैः*"—सद्गुरुको समस्त शास्त्रोंमें श्रीहरिका स्वरूप कहकर बतलाया गया है। 'स्वयं श्रीहरि' ऐसा कहनेसे भी अनेक बार भूल धारणा होती है, क्योंकि स्वयं श्रीहरि—विषय-विग्रह हैं, और गुरुदेवको आश्रय-विग्रह कहा गया है। जिनके आश्रयमें रहकर भगवद्भक्ति और शिक्षा प्राप्त होती है। इसलिये कहा गया है, 'हरित्व'—हरिके सद्गुण सद्गुरुमें प्रवेश करते हैं—ऐसा बतलाया गया है। "*कृष्णभक्ते कृष्णेर गुण सकलि सञ्चारे।*" भगवान्के जितने सद्गुण हैं, वे सद्गुण सद्गुरुमें प्रवेश करते हैं। इस बातको श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार, सम।
निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिञ्चन॥
सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण।
अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड्गुण॥
मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी।
गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी॥

वैष्णवोंके यह २६ लक्षण सद्गुरुमें सुप्रकाशित होते हैं। सद्गुरु कौन हैं?—शास्त्र कहते हैं—"किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य"—भगवान्के अति प्रियजन, श्रेष्ठजन और विशेष कार्यके लिये जो श्रेष्ठ सेविका हैं, उनको ही सद्गुरु कहा गया है। उन गुरुकी मैं वन्दना करता हूँ। गुरुतत्त्वकी व्याख्या करते हुए कहा गया है, गुरु mediator होते हैं, जो भगवान्के साथमें हमारा संयोग करवाते हैं। जो भगवान्के साथ सम्पर्क, हमारा सम्बन्धज्ञान उदित करवा सकते हैं, वे ही सद्गुरु होते हैं। उनके सम्बन्धमें शास्त्र विचार करते हैं, क्या वे विषय-विग्रह हैं या आश्रय-विग्रह, अथवा भोक्ता-भगवान् हैं? 'साक्षात् हरि' कहा गया है, यह क्या उनका विशेषण होगा? वे भोक्ता हैं अथवा भोग्या, ऐसा भी विचार किया गया है। जहाँ भोग्या हैं, वहाँ वे आश्रय-विग्रह हैं, शक्ति-जातीय तत्त्व हैं और विषय-विग्रह होनेपर तो वे भोक्ता-भगवान् होंगे। गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें ऐसा कहा गया है। पुनः उस तत्त्वके विषयमें कहा गया है कि वे साक्षात् रूपसे भगवान्को प्रदान कर सकते हैं। यहाँ पर recommendation की बात कही गयी है—

वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।
मो हेन पामर प्रति हबेन सदय॥

यह महाजन पदावलीमें है। गुरुके आवेदनसे कृष्ण दयामय होते हैं, उनके recommendation को छोड़कर भगवान् किसीको भी अपना कहकर वरण नहीं करते हैं—ऐसा कहा गया है।

गुरुतत्त्वकी चर्चा करते हुए देखा जाता है,—दीक्षागुरु, शिक्षागुरु, महान्तगुरु, चैत्यगुरु आदिकी बातें कही गयी हैं। वहाँपर दीक्षागुरु और शिक्षागुरुमें अभेद कहा गया है। तथापि शिक्षागुरुसे दीक्षागुरुकी महिमा-माहात्म्य अधिक रूपमें प्रचारित है। शास्त्रोंमें इसे विभिन्न स्थानोंपर युक्तिके साथ भलीभाँति समझाया गया है। शिक्षागुरुकी जो श्रेष्ठता है, वह दीक्षागुरुको लेकर ही है। दीक्षागुरुको छोड़कर शिक्षा-गुरुत्व नहीं होता है।

गुरुरूपमें स्वयं भगवान्के द्वारा शिक्षा प्रदान

भगवान् स्वयं कभी-कभी गुरुरूपमें इस जगत्में आते हैं। वे सद्धर्मकी शिक्षा देते है। उस स्थानपर यह प्रार्थना रहती है—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुरेव परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

(श्रीगुरु स्तोत्रम्)

स्वयं भगवान् जब गुरुरूपमें आते हैं, गुरुका कार्य करते हैं, उन भगवान्‌रूपी गुरुको इस प्रणाम मन्त्रके द्वारा प्रणाम किया गया है। "गुरुरेव परंब्रह्म।" परमब्रह्मका अर्थ है स्वयं भगवान्, उनका ही विशेषण हुआ है परमब्रह्म। परमब्रह्मरूपी भगवान् जब अवतीर्ण होते हैं, इस मन्त्रके द्वारा उनको ही प्रणाम किया गया है। अनेक लोगोंकी यह धारणा है कि गुरु ही स्वयं भगवान् हैं, इसलिये उनके चरणोंमें तुलसी दी जा सकती है। गुरुके चरणोंमें तुलसी नहीं दी जाती—यही सनातन धर्मकी रीति है, शास्त्रसिद्धान्त-सम्मत विचार है। क्यों?—वे आश्रय-विग्रह हैं। समस्त आश्रय-विग्रहोंके मध्य श्रेष्ठ हैं "श्रीराधा ठाकुरानी"। उनके चरणोंमें तुलसी नहीं दी जाती है, वे तुलसीको ग्रहण नहीं करती हैं। गुरु यदि सखीकी अनुगता सखी हों, तब उनके चरणोंमें तुलसी कैसे दी जायेगी? ऐसा नहीं होता है। किन्तु बहुतसे लोग जो तत्त्वदर्शन नहीं समझते हैं, वे उल्टा-पुल्टा विचार करते हैं। यह अपराधका ही आह्वान करना होता है। वहाँ पर गुरुके गुरुत्वको अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि गुरु आश्रय-विग्रह हैं—शक्ति हैं।

सद्‌गुरु

सद्‌गुरु शब्दकी व्याख्या शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें दी गयी है। वहाँ यह कहा गया है कि वे जगत्‌वासियोंको भगवत् सेवाकी ही शिक्षा प्रदान करते हैं, अपनी सेवाकी नहीं। यदि कोई गुरु कहे, —'मैं तुम्हारा भगवान् हूँ, मेरी ही पूजा करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा सब कुछ हो जायेगा'—वह निश्चय ही सद्‌गुरु नहीं है। वह अन्यायकारी असद्‌गुरु है। भगवत् सेवा ही वास्तविक वस्तु है। उस वस्तुको प्राप्त करनेके लिये ही सद्‌गुरुका आश्रय ग्रहण करना होता है। सद्‌गुरु कभी भी नहीं कहेंगे—तुम गुरुपूजा करो, गुरुपूजा करनेसे तुम्हारा सब कुछ हो जायेगा, और कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह सद्धर्मके विरोधी बात है। जो सद्‌गुरु होते हैं, वे भगवत्-सेवाका प्रचार करते हैं। भगवान्‌की महिमाका ही कीर्तन करते हैं और वे भगवान्‌के उच्छिष्ट-भोजी सेवक होते हैं—वे इसी बातको ज्ञापन करेंगे।

तद्‌विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्‌पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

(मुण्डक १/२/१२)

"*आदौ गुरुपदाश्रय।*" सर्वप्रथम तत्त्वजिज्ञासाके लिये मैं गुरु-पदाश्रय करूँगा। 'समित्‌पाणि'—उनके पास हाथ जोड़कर जाना होता है। क्यों?—ऐसा नहीं होनेपर मुझे कोई भी उपदेश-निर्देश प्राप्त नहीं होगा। इसलिये, मैं कुछ भी नही जानता हूँ, समझता हूँ—इसी भावको लेकर अग्रसर होना होगा। कैसे गुरुके समीप?—श्रौत्रिय गुरु, शास्त्रसिद्धान्तमें निपुण गुरुके ही निकट जाना है। शास्त्रसिद्धान्त तो अनेक लोग जानते हैं, अनेक लोग तो शास्त्रोंकी चर्चा करते हैं। जगत्‌में अनेक intellectualist हैं, अनेक merit वाले लोग भी होते हैं, क्या वे सद्‌गुरु हैं? नहीं। अप्राकृत तत्त्व-विचारमें जो पारङ्गत होते हैं, उनकी बात यहाँ कही गयी है। 'ब्रह्मनिष्ठम्'—अर्थात् परब्रह्ममें निष्णात, भगवान्‌के प्रति पूर्ण निर्भरशील, भगवान् ही उनके एकमात्र रक्षक, उद्धारकर्त्ता हैं, इस प्रकारसे जिनका विश्वास है, वे सद्‌गुरु होते हैं। श्रीमद्भागवतमें भी इसी प्रकारकी बात देखी जाती है। "*तस्मात् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।* (श्रीमद्भा. ११/३/२१)—सद्‌गुरुके निकट जाकर तुम उत्तमश्रेयः उत्तम-कल्याणकी जिज्ञासा करो, आत्म-कल्याणजनक प्रश्न रखो, तुम्हारी आत्माका कल्याण किस प्रकार होगा, तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, कहाँ जाओगे,

क्या कर रहे हो—इन सब प्रश्नोंके यथायथ उत्तर पानेकी इच्छा होनी चाहिये। उनके निकट जाकर ये सब प्रश्न करने चाहिये। और ये प्रश्न न करके बाजारमें धान-चावलका क्या मूल्य है? बाजारका मूल्य जानना चाहोगे या राजनीतिके क्षेत्रमें क्या हो रहा है?—ये सब अवान्तर प्रश्न हैं अर्थात् प्रसङ्गसे बाहरकी बात है। जगत्के लोगोंके पास ये सब समाचार होते हैं, वे जानते हैं। जो समाचार किसीके पास नहीं है, कोई जानता नहीं है, उस प्रसङ्गके सन्धानके लिये, आत्मकल्याणके लिये सद्गुरुके पास जाना होगा। '*तस्मात् गुरुं प्रपद्येत*'—शरणागति स्वीकार करो, तुम अपनी बहादुरी (योग्यता) दिखाना बन्द करो। यदि कोई व्यक्ति इस संसारमें योग्यता प्रकाश कर सकता है, तो केवल सद्गुरु ही ऐसा कर सकते हैं। किन्तु वे अपनी महिमाका गान नहीं करते हैं, भगवान्की महिमाका ही गान करते हैं। भगवान् कैसे प्रेममय हैं—इसी बातको वे जगत्के जीवोंको बतायेंगे और समझायेंगे। वे कौन हैं?—'श्रोत्रियम्', "*शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥*" (श्रीमद्भा. ११/३/२१) वे शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात अर्थात् समस्त शास्त्रोंमें तथा भगवान् [के अनुभव]में पारङ्गत और भक्तिमान् हैं। सद्गुरुकी उन भगवान्के ऊपर अद्भुत निर्भरता होती है। शब्दशास्त्रमें वे पारङ्गत होते हैं, शास्त्र-सिद्धान्तमें वे सुनिपुण हैं। सद्गुरु दो प्रकारके होते हैं—साधनसिद्ध और नित्यसिद्ध। जो नित्यसिद्ध महात्मा हैं, वे तत्त्व-सिद्धान्तके सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान रखते हैं।

केवल शास्त्र-सिद्धान्तमें सुनिपुण होनेसे ही नहीं होगा। मेरे श्रीगुरुपादपद्म यही बात कहते थे और समझाते थे। 'Devil can also quote scriptures'—शैतान भी सनातन शास्त्रके विषयमें श्लोक बोल सकता है। एक साधारण मनुष्य भी अनेक शास्त्रोंकी quotation देकर अनेक बातें बता सकता है। ऐसा होनेपर सद्गुरुकी व्याख्या देते हुए कहा गया है "*शाब्दे परे च निष्णातम्*" अर्थात् जिस प्रकार उनकी शब्द-शास्त्रमें पारङ्गति है, वैसे ही वे परब्रह्म भगवान्में भी निष्णात है। भगवद्भक्तिमें निष्णात, भगवान्के ऊपर सम्पूर्ण रूपसे निर्भर रहनेवाले हैं। जहाँ कहा गया है,—

कृष्ण अमाय पाले, राखे—जान सर्वकाल।
आत्मनिवेदन-दैन्य, घुचाओ जञ्जाल॥

भगवान् मेरे पालन-पोषण कर्त्ता हैं। उनको छोड़कर इस जगत्में और कोई भी मेरी रक्षा करनेवाला नहीं है—ऐसा दृढ़ विश्वास जिनका होता है, वे ही सद्गुरु हैं। जो ऐसा कहते हैं कि कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो वे भगवान् ही मेरी रक्षा करेंगे, मेरे गुरु ही मेरी रक्षा करेंगे—वे ही उपयुक्त सद्गुरु हैं। ऐसी निर्भरता साधारण मनुष्यमें नहीं होती। गुरुके जो २६ प्रकारके सुलक्षण शास्त्रमें वर्णित हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ गुण जिसे केन्द्रित करके अन्य २५ गुण हैं वह—**कृष्णैकशरणता**—भगवान्के प्रति एकनिष्ठता, ऐकान्तिकता है। तभी कहते हैं-

तव पादपद्म नाथ रक्षिबे आमारे।
आर रक्षाकर्त्ता नाइ ए भव संसारे॥

ऐसे विचार और भावना सद्गुरुमें ही होती है। अन्य किसीमें खोजनेपर भी ऐसी निर्भरता प्राप्त नहीं होती है। हम साधारण व्यक्ति सब समय oscillate करते हैं, चित्तवृत्ति विक्षिप्त होती है, एक-एक समयमें एक-एक प्रकारसे। किन्तु सद्गुरु एकनिष्ठ होते हैं, उनका एक ही ध्यान और एक ही ज्ञान होता है, वे कभी भी विभ्रान्त नहीं होते हैं। मूल तत्त्वदर्शनसे वे कभी deviate नहीं होते हैं, हटते नहीं हैं।

सद्गुरुका सद्गुरुत्व उनकी गुरुभक्तिके ऊपर, निष्ठाके ऊपर निर्भर करता है। इन गुणोंके बिना कुछ भी नहीं होता है। सम्पूर्णरूपसे सद्गुरुकी व्याख्या जो शास्त्रोंमें की गयी है, वहाँ देखा जाता

है, भगवान्‌की कृपाशक्ति ही गुरुरूपमें आविर्भूत होती है। भगवान्‌की कृपाशक्ति ही गुरुतत्त्व है। शास्त्र इस वस्तुकी विशेषरूपसे व्याख्या करते हैं।

सद्‌गुरु-सत्‌शिष्य

शास्त्रोंकी आलोचना करते हुए देखा जाता है, जिस प्रकार 'सद्‌गुरु'-शब्द है, वैसे ही उसके सङ्गमें 'सत्‌शिष्य' शब्द भी है। दोनोंका परस्परमें सम्पर्क और सम्बन्ध है। 'गुरु'-शब्द जहाँ है, उसके निकटमें ही 'शिष्य'-शब्द भी वर्तमान है। पिता जहाँ हैं, वहीं पुत्र शब्द भी निकटमें होता है—पिता-पुत्र। शिष्य कौन होते हैं?—जो शासन स्वीकार करते हैं, सब प्रकारसे गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं, गुरुके उपदेश-निर्देशके अनुसार सब प्रकारसे अपने जीवनको वास्तवमें ढालते हैं, अपने जीवनको ही गुरु-सेवामय कर देते हैं—वे ही सत्‌शिष्य होते हैं। किन्तु वर्तमान समयमें हममें-से कोई भी शासनको तो स्वीकार नहीं करना चाहते, सामान्य स्नेह-शासनको भी हम अधिकतर समझ नहीं पाते हैं। सब समय हम अपनी मिथ्या प्रशंसा चाहते हैं—हमें कोई अच्छा कहे। बुरा कहनेपर एक छोटा बच्चा भी रोने लगता है। उसके भीतर भी मान-अभिमान होता है। और हम जो साधारण मनुष्य हैं, हमारे भीतर भी अनेक दुख-दैन्य है। हम लोगोंने इस संसारमें उस दुख-दैन्यको लेकर ही बद्धता प्राप्त की है। भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्सा—इन चार दोषोंको लेकर हमने जन्म ग्रहण किया है। इनके हाथोंसे हमारा छुटकारा नहीं है। अपने भावों[अवस्था]को सङ्गोपन करके जगत्‌के निकट, साधारण मनुष्यके निकट हम अच्छा दिखना चाहते हैं। इससे अधिक दुःखका विषय और क्या हो सकता है? परीक्षा तो हमें भगवान्‌के निकट, सद्‌गुरुके निकटमें देनी ही होगी। हमें अपने अन्तर हृदयको स्वयं प्रकाशित करना होगा। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सत्‌शिष्य हैं, वे वास्तविक छात्र हैं।

सद्‌गुरुके आश्रयमें वास

'*मठन्ति वसन्ति छात्राः*'—छात्रगण, शिष्यगण आश्रममें वास करते हैं, गुरुगृहमें वास करते हैं। इस गुरुगृहमें हम सभी वास करते हैं। यदि हम सोचते हैं कि—हम केवल ब्रह्मचारी या वानप्रस्थी या संन्यासी ही गुरुगृहमें वास करते हैं, तो ऐसा नहीं है। जिस क्षणमें गृहस्थ होकर हम सोचें कि हम गुरुगृहमें वास नहीं करते हैं, उसी समयसे ही हमारा अधोपतन होने लगता है। मैं सद्‌गुरुके आश्रयमें, गुरुके उपदेश-निर्देशसे उनके (गुरुके) सङ्गमें ही वास करता हूँ—यदि ऐसी भावना रहे तब सर्वत्र ही हमारा कल्याण होगा। क्या घरमें, क्या मठमें, ऐसी ही भावना रखनी होगी। जब भी मेरी ऐसी भावना हो कि संसारमें मेरा कोई नहीं है, तभी यह विचार करना होगा कि गुरु तो मेरे आश्रय हैं, श्रीगौरसुन्दर तो मेरे आश्रय हैं, श्रीभगवान् तो मेरे आश्रय हैं। यदि ऐसी भावना नहीं कर सकें, भगवान्‌को यदि हम अपने स्मृतिपथसे हटा दें, तब तो जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें ही हम असफल हो जायेंगे। श्रीभगवान्‌को अपने स्मृतिपथमें रखनेका अर्थ ही है—भगवान् एवं सद्‌गुरुके आदेश-निर्देश-उपदेशको जीवनमें पालन करना, उसे वास्तविकरूपसे अपने जीवनमें धारण करना। इसीको स्मरण कहते हैं।

स्मर्त्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।

(भक्तिरसामृतसिन्धु १/२/८)

इस वाक्यका अर्थ है—भगवद्वाक्य और गुरुवाक्यका मैं अपने जीवनमें आचरण करूँगा।

अमानी-मानद-धर्ममें दीक्षा

उपदेश करते समय हम अपनी बात नहीं बोलेंगे, ऐसा बोलना उचित नहीं है, तथापि हमारे गुरुवर्गने यह उपदेश किया है—ऐसा मैं हर समय कह सकता हूँ। 'स्वयं भगवान्‌ने शास्त्रमें यह उपदेश किया है,

आप लोग श्रवण करें'—ऐसा कहना ठीक है। इसमें दाम्भिकता नहीं है, अहङ्कार नहीं है। इसके भीतरमें है—हृदयका स्वाभाविक दैन्य, यहीं तो हमारे सीखनेका विषय है। यदि हम अपने भीतरमें अहङ्कारका पोषण करते हैं, तो कृष्णनाम कीर्त्तन करनेका हमारा अधिकार नहीं होता है—

दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा-वर्जन।
चारिगुणे गुणी हइ', करह कीर्त्तन॥

हम यदि अमानी-मानद-धर्ममें दीक्षित नहीं हो सकते, तो हमारे द्वारा भगवन्नाम कीर्त्तन करना सम्भव नहीं है। श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण सब कुछ पशु-श्रम हो जायेगा। मेरे श्रीगुरुपादपद्म कहते थे—'स्मरणपन्थी अधोपन्थी'। जिनका प्राकृत भाव दूर नहीं हुआ, अप्राकृत भावमें जो विभावित नहीं है, वे यदि स्मरणपथको ग्रहण करते हैं, तब जगत्में उत्पातकी सृष्टि होगी। स्मरण वास्तवमें कब रूपायित होगा?—कीर्त्तनके प्रभावसे। इसी बातको श्रील सरस्वती प्रभुपादने कहा है, श्रील गुरुपादपद्मने भी कहा है। अन्याभिलाष, लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाशा, जब तक हमारे हृदयमें रहती है, तब तक लीला-स्मरण नहीं होता। और सबसे प्रधान लक्ष्य करनेका विषय हैं—भजनविरोधी जो सब भाव समाजमें, संसारमें हैं, उन सबकी छविको भीतर-भीतरसे छोड़ना होगा। यही विशेष उपदेश है।—

ततो दुःखसङ्गमुत्सृज्य सत्सुसज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः॥
(श्रीमद्भा. ११/२६/२६)

दुःसङ्गको छोड़कर सत्सङ्गको ग्रहण करो—यह बात कही गयी है। किन्तु यदि दुःसङ्गके सम्बन्धमें हमारा कोई concrete idea—वास्तविक धारणा न हो, तो हम दुःसङ्ग नहीं छोड़ सकते। पुनः सत्सङ्गके सम्बन्धमें यदि हमारी वास्तविक धारणा न हो, तो उसे भी ग्रहण नहीं कर सकते। इसीलिए दुःसङ्ग क्या है—हमें जानना, समझना और सीखना होगा और सत्सङ्ग कौन-सा है, उसे भी जानना, समझना और सीखना होगा। इसलिये शास्त्रोंमें विचार-युक्तिके साथ दिखलाया गया है,—तुम बुरेकी भी आलोचना करो और सद्भावकी भी आलोचना करो। दोनोंको ही साथ-साथ जानकर, समझकर एकको छोड़ो और एकको ग्रहण करो। साधु-सज्जनगणोंकी जो वाणी है, वह विशेषरूपसे शक्तिशाली है। जो कोई भी व्यक्ति यदि उनकी बातोंको सुने, उसका कल्याण होगा। यदि वास्तविक साधुसे कथा श्रवण की जाय तो बहुत समयसे सञ्चित पाप-अनर्थ दूर हो सकते हैं। ऐसा नहीं होनेपर कल्याण नहीं होगा, साधन-भजन भी सम्भव नहीं होगा। साधन-भजन कैसे करना होगा? बहुमुखी नास्तिकता चारों ओर व्याप्त है। हमें किसको छोड़ना है और किसे ग्रहण करना है, उसे हमें समझना होगा। शिष्यका शिष्यत्व इसीमें सुप्रतिष्ठित है।

गुरुकी भक्ति और सतीर्थगणोंका सम्मान—दोनों ही कर्त्तव्य

जहाँ कहा गया है,—"*गुरुर सेवक हय मान्य आपनार।*" हमने भगवान्की बहुत भक्ति की, किन्तु गुरुकी भक्ति नहीं की, पुनः गुरुकी भक्ति की परन्तु हमने सतीर्थगणों (गुरु-भ्राताओं) की अवहेलना, अवज्ञा की, उनका असम्मान किया, उपेक्षा की—वैसा करनेपर क्या हमारी गुरु-सेवा, कृष्णसेवा हुई?—नहीं होगी। इसलिये यह बात शास्त्रोंमें विशेषरूपसे कही गयी है, समझायी गयी है। हम यदि वैष्णवोंका सम्मान नहीं कर पाते, सतीर्थगणोंको सम्मान नहीं दे पाते, तब तो हमारा साधन-भजन बहुत दूर है। गुरु-वैष्णवगणमें सबके वाणी-वाक्य एक समान नहीं होते। कोई हो सकते हैं थोड़ा कर्कश बोलनेवाले, कोई हो सकते हैं

थोड़े मृदुभाषी, किन्तु उनके भीतरकी जो भक्तिवृत्ति है, श्रद्धा-विश्वास है, वहीं हमारे विचारका विषय है। हमारे भीतरमें उतने परिमाणमें भक्ति और श्रद्धा-विश्वास है अथवा नहीं, यदि हम स्वयं ही इसकी परीक्षा करेंगे, तभी हमारा कल्याण होगा। दूसरोंका क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, वह हमारे देखने योग्य नहीं है, आलोच्य भी नहीं है। हम यदि अपना कल्याण चाहते हैं, तब हमारे भीतरमें कितने कुछ सद्गुण हैं, यही विचारका विषय है। "*सर्वत्र सारमादद्यात् पुष्पभ्यः इव षट्पदः।*" जिसमें जितने अच्छे गुण हैं, जितनी सत्वृत्ति है, उतना ही हमें अपने जीवनमें संग्रह करना होगा—यह वृत्ति ही सबसे कल्याणकारी वृत्ति है।

गुरु-वैष्णवोंका शासन स्वीकार करना

सद्गुरुके लक्षणमें कहा गया है—'*वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि*'—वज्रसे भी अधिक कठोर एवं कुसुमसे भी अधिक कोमल। ये दोनों भाव ही simultaneously—युगपत् रूपसे सद्गुरुके, वैष्णवोंके भीतर रहते हैं। ऐसा होनेपर हम क्या करेंगे? कारण, थोड़ी कड़वी बात सुनी, किन्तु उसके भीतरमें हमारा कल्याण है, इस बातको भी हम स्वीकार नहीं कर पाते। सब समय मीठी मिथ्या-प्रशंसा सुनते-सुनते हमारा अभ्यास हो गया है। इसलिये जब भी थोड़ी-सी समालोचनाकी बात आती है, तभी वह हमें ओर अच्छी नहीं लगती है, उसको हम ठीकसे ले नही पाते। क्या कल्याण होगा! हम शिष्य हैं और शिष्यत्वको स्वीकार किया है, किन्तु इसके लिये हमने ठीकसे प्रतिज्ञा नहीं की कि—हम गुरु और वैष्णवोंके शासनको स्वीकार करेंगे। वैसी चित्तवृत्ति तो बनी नहीं है। भगवद्भजन-साधन करनेके लिए इन सबका हमें विचार करना होगा। शासनको स्नेह-शासन जानकर ग्रहण करना होगा। इसके भीतरमें हमारा कल्याण निहित है, इस रूपसे उस वस्तुका विचार करना होगा। अनेक बार देखा जाता है—गुरु-वैष्णवोंने किसीके सम्बन्धमें कोई एक statement दी, उससे हमारा मन दुःखी हो गया। नहीं, मैंने तो ऐसा कोई दोष नहीं किया है। फिर क्यों मेरे प्रति मिथ्या आरोप लगाया जा रहा है, मुझे दोषी ठहरा रहे हैं। शास्त्र इस विषयमें कहते हैं,—हमारे पूर्व-पूर्व गुरुवर्गने सिखाया है—"हाँ! तुमने कोई दोष नहीं किया, यह बात तो ठीक है, किन्तु भविष्यमें इस प्रकारसे तुमसे ऐसा कोई दोष न घटित हो जाए, इसलिये तुम पहलेसे ही सावधान हो जाओ।" इस विचारको यदि हम ग्रहण करते हैं, तब हमारा अकल्याण नहीं है। क्यों?—स्कूल-कॉलेजमें लड़के-लड़कियाँ कुछ समयके लिये जाते हैं, किन्तु whole time guardian होते हैं—सद्गुरु और वैष्णव। उनका विशेष दायित्व होता है। इस जगत्के guardian से सैकड़ों गुणा अधिक दायित्व गुरु-वैष्णवोंका होता है। उस दायित्वको समझना होगा।

स्वयं भगवान् कृष्णका गुरुगृहमें गमन

श्रीकृष्ण गुरुगृहमें गये थे। गुरुकी आज्ञासे कठोर परिश्रम किया—इसका वर्णन भागवतमें है। और उनके जो सतीर्थ हैं, उनको भी [सान्दीपनि मुनिने] समान रूपसे ही शिक्षा दी। सद्गुरु सन्तुष्ट हुए, आशीर्वाद किया। स्वयं भगवान्का गुरुगृहमें जानेका कोई प्रयोजन नहीं था, किन्तु जगत्की शिक्षाके लिये उनका वहाँ जाना हुआ।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

(गीता ३/२४)

मैं यदि अपना कर्माचरण न करके शिक्षा दूँ, तो उसके द्वारा जगत्के लोग शिक्षा प्राप्त नहीं

करेंगे। इसलिए स्वयं भगवान् कृष्ण गुरुगृहमें जाते हैं एवं कठोर परिश्रम स्वीकार करते हैं, हम जैसे मूर्ख, हतभागे लोगोंके लिये। वे स्वयं भगवान् हैं, तथापि गुरु सान्दीपनि उनको आशीर्वाद देते हैं। गुरुके अनुग्रह, आशीर्वाद, मङ्गल-कामनाका प्रयोजन है—इसीको दिखा रहे हैं।

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च॥

(श्रीमद्भा. १०/८०/४२)

—मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हूँ, मैं तुम्हारी सेवासे सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हों, वैदिक ज्ञान तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करे और चिरकाल तक जागरुक रहे—ऐसा आशीर्वाद किया। सद्गुरुके अनुग्रहसे शिष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता, सर्वस्व प्राप्त होता है—यही बात कह रहे हैं। बिना पढ़े क्या पण्डित हो सकते हैं? हाँ। "*गुरोरनुग्रहेनैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये*"—यह बात कही गयी है। इसके बहुत उदाहरण हैं।

श्रीगुरुपादपद्मका जीवन ही उनकी शिक्षा है

Academic qualification साधन-भजनमें एकमात्र प्रयोजन नहीं है। वहाँ तो श्रद्धा-भक्ति-विश्वास ही प्रधान हैं। वहाँ पर यदि दोनों ही हों, तो सोने पर सुहागा। किन्तु उसका अपव्यवहार नहीं किया जाए, ऐसी बात भी कही गयी है। विद्या शिक्षा बुरी वस्तु नहीं है। '*विद्या ज्ञानाय कल्पते, न तु धनाय।* तथापि विद्या-शिक्षाका एक गौरव है। यह गौरव क्या है? —'*विद्या ददाति विनियम्*'—विद्या शिक्षा प्राप्त करनेपर विनयी हुआ जाता है, दैन्यभाव आता है—यही विद्या-शिक्षाका उपयुक्त व्यवहार है। ऐसा नहीं होनेपर यदि विपरीत फल हो, जैसा कि वर्तमान समाजमें देखा जाता है, '*विद्या ददाति औद्धत्यम्*' तब क्या करेंगे? क्या समझेंगे?

वह गुरुमुखी विद्या नहीं हुई, नास्तिक्य विद्या-शिक्षा प्राप्त की है, उसमें केवल स्वार्थ ही प्रकाशित हुआ है। सद्गुरुकी जो शिक्षा है, उस शिक्षाके भीतरमें कल्याण निहित है, साधारणरूपसे उसे हम समझ नहीं पाते हैं, किन्तु चिन्ता-विचार करनेपर यह अनुभवका विषय होता है। श्रीगुरुपादपद्मका जीवन ही उनकी शिक्षा है। पृथक् रूपसे शिक्षाका कोई प्रयोजन नहीं है, पृथक् उपदेशकी भी आवश्यकता नहीं है। साधु-महापुरुषोंका जीवन ही उनकी शिक्षा होती है, उनका जीवन ही उनकी वाणी होती है। वाणी ही उनका जीवन है और जीवन ही उनकी वाणी—दोनों एक ही तात्पर्यपर हैं। एक ही रूपमें एक ही सूत्रमें गूँथे हैं। इसलिये साधु-महात्माकी अतिमर्त्त्य जीवनीकी यदि आलोचना की जाय, तभी उनकी सब शिक्षाओंको प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये ही साधु-महापुरुषोंकी जीवनीकी आलोचनाका एक वैशिष्ट्य होता है। इसका प्रयोजन है।

श्रीगुरुका अतिमर्त्त्य वैशिष्ट्य

श्रीगुरुपादपद्मने अनेक क्षेत्रोंमें बहुत वैशिष्ट्य स्थापित किये हैं, ऐसा उनकी जीवनीमें देखा जाता है। साधारण मनुष्य अथवा जो भक्तिकी धारामें रहे हैं, वे भी कुछ वैशिष्ट्य स्थापन करते हैं—ऐसा देखा जाता है। किन्तु श्रीगुरुपादपद्मने किसी स्थानपर ऐसी अद्भुत व्याख्या दी है, जो व्याख्या साधारण मनुष्यने कभी भी सुनी नहीं है, जानी नहीं है। और वह व्याख्या शास्त्र-सम्मत है, तत्त्वसिद्धान्त-सम्मत है। जिस व्याख्याके सम्बन्धमें कोई आशा भी नहीं सकता है कि इस श्लोकका ऐसा अर्थ हो सकता है। इसको क्या कहा जायेगा?—उनका अतिमर्त्यत्व। साधनके क्षेत्रमें सिद्धावस्थामें उन्होंने कितनी ऐसी वस्तुएँ भगवद् कृपाके प्रभावसे प्राप्त की, जो साधारण मनुष्यके पक्षमें सम्भव नहीं हैं। उसको अलौकिकत्व कहा जा

सकता है। यह अलौकिकत्व नित्यसिद्ध महात्मागणोंमें रहेगा, आयेगा ही और सर्वत्र वैशिष्ट्य स्थापन—यह भी महापुरुषोंके जीवन चरित्रमें देखा जाता है। साधारण मनुष्य जो कुछ करते हैं, उससे भी कुछ असम्भव उन्होंने स्थापित किया है। नास्तिकोंके नास्तिक्यवादका खण्डन, तत्त्व-सिद्धान्तके द्वारा भगवद्-विरोधी जनोंके सबकुछ [विरोधी-भावको] ही दूर करना—ऐसी अद्भुत क्षमता उनमें थी। जिन युक्तियोंको किसीने कभी भी सुना नहीं, उन युक्तियोंकी उन्होंने अवतारणा की। एक-दो युक्तियाँ देकर ही सब समझा देते थे। एक डॉक्टर को Medical science का उदाहरण देकर, एक वकीलको कानूनके माध्यमसे, एक इंजिनियरको Engineering theory देकर तत्त्वदर्शन समझा दिया। इस प्रकारकी सर्वतोमुखी प्रतिभा साधु-सज्जन व्यक्तियोंके भीतर होती है। गुरुपादपद्ममें यह सब देखा जाता है। उन्होंने वकालत पास नहीं की, किन्तु अनेक वकीलोंको, बैरिस्टरोंको point सुझा देते थे, कानूनका उदाहरण देते थे। A. I. R. (All India Report) में यह है, C. W. N. (Calcutta Weekly Notes) के भीतरमें यह है, अमुक पृष्ठ पर है। कानूनके सब reference दे देते थे। यह सब उनका अलौकिकत्व है।

यह जो श्रीमन्दिरको (श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके नौचूड़ायुक्त श्रीभगवान्के मन्दिरको) आप देख रहें हैं, इसे कोई Engineering plan लेकर नहीं बनाया गया। यह स्वयं गुरुपादपद्मका अपना कृतित्व है। उन्होंने अपने द्वारा ही सब plans दिये थे और उसीके अनुसारसे ही सब कार्य हुआ था। यहाँ सभी कार्योंमें ही उनका वैशिष्ट्य वर्तमान है। वहाँ जो प्रवेश द्वार पर लिखा है—

जय नवद्वीप-नवप्रदीप-प्रभावः पाषण्डगजैकसिंहः।
स्वनामसंख्याजपसूत्रधारी चैतन्यचन्द्रो भगवान्मुरारिः॥

(चैतन्य भागवत, मध्य लीला ५/१)

एक ही स्तवके बीचमें उन्होंने आश्रय-नरहरिका स्तव किया है और विषय नरहरि श्रीनृसिंहदेवका भी स्तव किया है। 'चैतन्यमुरारि'का भी स्तव किया है। यहाँ मठ-मन्दिरमें जो कुछ निर्माण हुआ है, उन सब खण्डोंका उन्होंने विभाग किया है। कौन-सा सेवकखण्ड है, कौन-सा ज्ञानखण्ड,

कौन-सा अर्चनखण्ड, पूजाखण्ड आदि विभिन्न भाग किये हैं। ज्ञान-खण्डको कहा है विष्ठाखण्ड—जहाँ भक्तगण पैखाना करने जाते हैं।

कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड, केवल विषयेर भाण्ड।
अमृत बलिया येवा खाय।
नाना योनि भ्रमण करे, कदर्य भक्षण करे,
तार जीवन अधःपाते याय।"

निर्विशेष कर्म, निर्विशेष ज्ञान, निर्विशेष योग सभी विफल हैं—ज्ञानखण्ड इसलिये नाम दिया। सभी खण्डोंकी ही वैज्ञानिक आलोचना है। जब भागवतकी व्याख्या करने बैठते थे, उस समय सब प्रकारके उदाहरण देते थे—न्यायका उदाहरण, षड्दर्शनका विचार बताते थे। एक श्लोककी दस-दस दिन तक व्याख्या करते थे। किन्तु प्रत्येक दिन जो व्याख्या करते उसके भीतरमें नवीनता या अभिनवत्व रहता था। पुरानी बात नहीं कहते थे। जो बात एक बार कह देते थे, उस बातको फिर दूसरी बार नहीं बोलते थे, द्विरुक्ति दोष नहीं होता था। अद्भुत कार्य! और उसी एक ही श्लोककी प्रतिदिन व्याख्या करते थे। एक बार देखा था—बेलघरियामें, उन्होंने तब श्रीवैद्यनाथ मुखर्जीके वास-स्थानपर एक महीने तक भागवतका पाठ किया था। तब प्रतिदिन वे दशम स्कन्धके प्रथम श्लोकसे आरम्भ करके एक अध्यायका प्रतिदिन पाठ करते थे, व्याख्या करते थे। एक अध्यायका डेढ़ घण्टेसे दो घण्टे ही पाठ करते थे। किन्तु उसके भीतरमें ही समस्त तत्त्वदर्शन, सब व्याख्या पूर्ण हो जाती थी। तो जो एक श्लोककी दस दिन तक व्याख्या कर सकते थे, वे एक अध्यायको प्रतिदिन समाप्त भी कर सकते हैं। उनमें सब प्रकारकी क्षमता है और उनके लिये सबकुछ सम्भव है।

गुरु-वैष्णवोंकी पारमार्थिक जीवनी ही साधकोंके लिये आलोच्य

सद्गुरुका जो वैशिष्ट्य है, उनकी महिमा-माहात्म्य अनन्त कहे गये हैं। भगवान्‌की अनन्त लीलाएँ हैं, उनकी महिमाका व्याख्यान करना स्वयं अनन्तदेवके

लिये भी सम्भव नहीं है। '*अनन्त राखिल नाम अन्त न पाइया।* सद्गुरुकी महिमा भी क्या पूर्ण रूपसे वर्णन की जा सकती है? दो-दस रातोंमें पूर्ण नहीं होती। रात्रिके बाद रात्रि चलती जायेगी। भगवान्का जिस प्रकार आविर्भाव-तिरोभाव है, भक्तोंका भी उसी प्रकार आविर्भाव-तिरोभाव होता है। "*आविर्भाव-तिरोभाव एइ कहे वेद।*" भक्तोंके सम्बन्धमें, सद्गुरुके सम्बन्धमें बहुत लोगोंकी भूल धारणाएँ हैं। हम उनकी प्राकृत चिन्ताओंकी आलोचना न करके उनके अप्राकृत भावोंकी ही आलोचना करेंगे। ऐसा न होनेपर हममें अनेक भूल-भ्रान्तियाँ आ जाती हैं। वैष्णवोंमें जातिबुद्धि, गुरुमें मनुष्य बुद्धि आ जाती है। इसलिये श्रीगुरुपादपद्मने किसी स्थान पर वक्तृता देते हुए कहा है,—गुरु-वैष्णवोंकी जीवनी अथवा उनके अतिमर्त्य चरित्रकी आलोचना करते समय पार्थिव जगत्के अनुष्ठान आदि आलोचनाका विषय नहीं हैं। उनका पारमार्थिक जीवन ही हमारे लिये अधिक उपयोगी है। साधारण रूपसे जो सब प्राकृत ऐतिहासिकगण हैं, साहित्यिकगण हैं, उन्होंने जो सब ग्रन्थ लिखे हैं, उनके भीतरमें उनके प्राकृत भाव ही प्रकट हुए है। किन्तु जो अप्राकृत भाव हैं, उन भावोंमें वे न तो स्वयं विभावित होते हैं और न ही अन्य लोगोंको भी कभी उन भावोंमें विभावित कर पाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु आविर्भूत हुए। वे कब मरे—इसी चिन्ताको लेकर ही सब ऐतिहासिकगण व्याकुल हैं। क्योंकि उन्होंने जन्म ग्रहण किया है, इसलिये उनको मरना होगा या मारना होगा। तभी उन्होंने [अपने लेखोंमें या कहानीमें] एक स्थानपर मार दिया। कहाँ?—पुरीके पण्डा लोगोंने उनको पीटकर मारा है। और जो सब अच्छी बातें हैं, वह सब उन लोगोंकी मन-बुद्धिमें स्पर्श ही नहीं करती। भगवान् श्रीरामचन्द्रने जब जन्म ग्रहण किया था, तब वे निश्चित ही मृत्युके मुखमें गये होंगे। कहाँ मरे? इसका अविष्कार कर दिया। जड़ साहित्यिकगण, जड़ ऐतिहासिकगण ठीक इसी प्रकारकी अनेक बातोंको लेकर विचार करते हैं। किन्तु अतिमर्त्य महापुरुषकी जीवनी इस प्रकारकी नहीं है। उनका आविर्भाव और तिरोभाव एक ही तात्पर्यपर होता है। उनके आविर्भावमें जगत्-कल्याणकी चिन्ता और तिरोभावमें भी जगत्-कल्याणकी चिन्ता होती है। इन भावोंको लेकर हम कभी भी भूल न करें। क्योंकि वे तिरोहित हो गये, इसलिये अब वे आविर्भूत नहीं हैं; वे अब हमारे सामने प्रकट नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। वे तिरोहित हो जानेपर भी चिर-आविर्भूत हैं। हमें अपने विचारोंमें इन भावोंको लाना होगा।

सद्गुरु निद्रित रहते हुए भी चिरजाग्रत

जिस प्रकार, ठाकुर श्रीविग्रहका शयन हो गया है और हमने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। इसमें दोष नहीं है। कोई साधारण मनुष्य जब सो रहा हो, तब उसको प्रणाम नहीं किया जाता है। किन्तु श्रीविग्रह शयनमें होनेपर भी उनको प्रणाम किया जाता है, इससे अपराध नहीं होता है। क्यों?—वे सोते हुए भी चिरजाग्रत हैं। उसी प्रकार वैष्णव सद्गुरु सोते हुए भी चिरजाग्रत हैं। इस बातको ही समझया गया है। इसमें कोई भी दोष-त्रुटि नहीं होती। किन्तु साधारण मनुष्यके क्षेत्रमें दोष-त्रुटि होती है। गुरुदेव अप्रकट हो गये हैं, इसलिये अब वे नहीं हैं, ऐसी बात यदि मनमें आये तो हम नास्तिक हो गये। ऐसा नहीं है, वे स्वयं आविर्भूत तत्त्व हैं और वे प्रकट हैं। वे अभी भी हमारे ऊपर नियन्त्रण कर रहे हैं, उपदेश-निर्देश दे रहे हैं।

गुरुदेव बलदेव-अभिन्न विग्रह

एक वक्ताने कहा है,—गुरुदेव नित्यकाल ही हैं और उनके उपदेश-निर्देश भी नित्यकालके लिये है। "*निताइयेर चरण सत्य, ताँहार सेवक नित्य*",—इस बातको समझना होगा। गुरुदेव बलदेवसे अभिन्न विग्रह

हैं, नित्यानन्दसे अभिन्न विग्रह हैं। इसलिये उनकी नित्यता है और नित्य स्थिति है। उनका तो प्राकृत जन्म-मृत्यु नहीं है—उनका आविर्भाव-तिरोभाव है। वे बाहरसे हमारी दृष्टिसे ओझल होनेपर भी भीतरमें अभी भी उपस्थित हैं। तिरोभावसे वे दूर हो गये हैं—यदि ऐसी बात हम मानते हैं, तब तो हम नास्तिक हो जायेंगे। वे सब समय हमारे सामने है, हमें guide कर रहे हैं, हमें नियमित कर रहे हैं—यदि हम ऐसा भाव रखें, तब हमारा दुर्दैव अथवा अमङ्गल नहीं होगा—यही शिक्षा उन्होंने [गुरुपादपद्मने] दी है।

मायावाद खण्डनमें दक्षता

मायावादका खण्डन करनेमें वे सदा ही हाथमें खड्ग अर्थात् तलवार लेकर रहते थे। और ऐसा तो रहेगा ही। जहाँ भी भक्तिविरोधी भाव होता है, सद्गुरु उसको कैसे सहन करेंगे? वे सब समय उसका दमन करेंगे। यदि किसीके भीतरमें भक्ति-श्रद्धाका लेशमात्र भी देखते, तब उसकी प्रशंसा करनेके लिये वे पञ्चमुख हो जाते हैं। बहुत सुन्दर! तुमने सेवा की है! बहुत अच्छेसे की है। इस प्रकारसे औरोंको भी सिखाओ। जैसे श्रीचैतन्य महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिर-मार्जनकी लीलामें जो शिक्षा दी है—जिसने बहुत धूल और कङ्कड़ संग्रह किये हैं, उसको और उत्साह देते हैं, तुम और पाँच लोगोंको सिखाओ। सद्गुरुके उपदेश-निर्देश भी इसी प्रकारके होते हैं। '*अल्प सेवा बहु करि*' माने'—वे अल्पमें ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनको हमारी बहुत सेवाकी अपेक्षा है—ऐसा नहीं है।

गुरुदेवकी महिमा

वे जागतिक विषयके सम्बन्धमें उदासीन हैं—

तुल्यनिन्दा-स्तुतिमौनी सन्तुष्टौ येन-केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

(गीता १२/१९)

"*यदृच्छालाभसन्तुष्टौ द्वन्द्वातीत विमत्सरः।*" यह बात भी है। '*आधिक्ये न्यूनताया च्यवते परमार्थतः।*'—उसे भी उन्होंने दिखा दिया है। वे अत्यन्त मितभाषी और मिताहारी थे। साधन-भजनके क्षेत्रमें यह भी रहेगा। भगवान्की सेवाके लिये मैं कष्ट स्वीकार करूँगा—यह प्रतिज्ञा अवश्य ही हमारा प्रयोजन है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने लिखा है,—

तोमार सेवाय, दुःख हय यत,
सेओ त' परम सुख।
सेवा-सुख-दुःख, परम सम्पद,
नाशये अविद्या-दुःख॥

हे भगवान्! आपकी सेवामें मुझे यदि कोई कष्ट होता है, मैं उसको कष्ट नहीं मानता हूँ। वह मेरा सुख है, क्योंकि वह मेरी सेवा है, मैं उसे आनन्दके साथ स्वीकार करूँगा। सेवारूप जो दुःख है, मैं उसे सुख कहकर ही मानता हूँ। ऐसा नहीं होनेपर सेव्यकी सेवा ही नहीं होगी। साधन-क्षेत्रमें अनेक विषयोंपर सद्गुरुके उपदेश-निर्देश होते हैं। उन सबकी अन्य समयपर आलोचना की जायेगी। आपलोग मेरे सभी प्रकारके दोषों-त्रुटियोंको क्षमा करें। वे परमाराध्यदेव हम सबके हृदयमें प्रेरणा प्रदान करें—जिससे हम सब मिलकर भगवत्कथा, हरिकथाका प्रचार कर सकें और उनके उपदेश-निर्देशका पालन करते हुए चल सकें। श्रीगौड़ीय-गुरुवर्ग और वैष्णवगणोंके निकट उनके आशीर्वाद और कृपाकी प्रार्थना करते हुए मैं अपने वक्तव्यको समाप्त करता हूँ।

[श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके श्रीहरिकथामृतसे अनुदित]

गुरुप्रेष्ठ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी अप्राकृत गुणावलीका किञ्चित् संस्मरण

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

[श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी व्यास-पूजा २९ दिसम्बर १९९१ एवं ६ जनवरी १९९४ को मथुरामें, तथा तदीय तिरोभाव-तिथिके उपलक्ष्यमें १८ नवम्बर २००४ एवं ५ नवम्बर २००५ को गोवर्धनमें प्रदत्त हरिकथाओंसे संग्रहीत]

मैं सर्वप्रथम अपने गुरुपादपद्म, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणकमलोंमें आत्मनिवेदन करता हूँ। तत्पश्चात् आज जिनका आविर्भाव है, उन गुरुश्रेष्ठ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीके चरणोंमें मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम है। आज अभी तक व्यासपूजा-महोत्सव चल रहा है। महोत्सव किसे कहते हैं? आनन्दको महोत्सव कहते हैं। साधारण व्यक्ति खान-पानमें, अच्छी-अच्छी वस्तुओंको देने और ग्रहण करनेको उत्सव मानते हैं। किन्तु गौड़ीय-वैष्णव हरिकथाका ही उत्सव करते हैं।

व्यास-पूजा किसे कहते हैं?

अन्यान्य सम्प्रदायोंमें आषाढ़ मासकी पूर्णिमाको गुरु-पूर्णिमा कहते हैं। उस दिन लोग—'आज श्रीव्यासदेवजीकी जन्म तिथि है'—ऐसा समझकर साधारण रूपमें व्यासजीके चरणोंमें पुष्पाञ्जली देते हैं। किन्तु हमारे गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें व्यास-पूजा कैसे पालन होती है? जो श्रीव्यासदेवके स्थानपर विराजमान होकर भगवान्‌की गुण-गाथाका विश्व-भरमें प्रचार करते हैं, वे आचार्य अपने आविर्भाव दिवसपर अपने गुरुदेव, वैष्णवों, गुरु-परम्परा, आराध्य श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीराधाकृष्णाकी जो पूजा करते हैं, उसे व्यास-पूजा कहते हैं। व्यास-पूजाका यह अर्थ नहीं कि हम गुरु बनकर शिष्योंसे पूजा ग्रहण करें।

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुका और आधुनिक कालमें आप नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीका उदाहरण लीजिये। पूज्यपाद महाराज अपने आविर्भाव दिवसपर आये हुए सभी वैष्णवों और व्रजवासियोंकी पूजा करते, उन्हें तिलक लगाते और माला, वस्त्र इत्यादि देते, सब प्रकारसे उनकी पूजा करते थे। यही नहीं, वे अपने शिष्योंके समान, अपने गुरु-भाईयोंके शिष्योंको, हम जैसे लोगोंको भी माला इत्यादि देकर आदर करते थे।

यदि इन सब आचारणोंकी शिक्षा न प्रदान की जाये, तो जैसा कि आधुनिक कालमें दृश्यमान है, बहुतसे लोग ऐसा ही समझते हैं कि गुरु-पूजाका अर्थ है—'मेरे शिष्य मेरी पूजा करें।' यह उलटी पूजा है, गुरु-पूजा नहीं। हाँ, इसके द्वारा शिष्यगण अपने गुरुकी पूजा करना तो सीखेंगे, उन्हें वैसा अवश्य करना भी चाहिये, अन्यथा अव्यवस्था उपस्थित होगी, किन्तु यदि गुरु ही आदर्श स्थापित नहीं करेगा, अपने गुरु और गुरुवर्गोंकी पूजा नहीं करेगा, तो शिष्य क्या उसकी पूजा करेंगे?

श्रीगुरु क्या वस्तु हैं?

श्रीमद्भागवत (११/१७/२७)में बतलाया गया है—'*आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥*'—आचार्यको, गुरुको मेरा ही स्वरूप समझो, उनकी कभी अवज्ञा मत करो। गुरु सर्वदेवमय हैं।' यह कौन कह रहा है? श्रीकृष्ण कह रहे हैं। हमारे श्रील जीव गोस्वामीजी इस श्लोककी टीका करते हुए यह कह रहे हैं कि 'यदि साधारण कर्मियोंके लिये अपने गुरुको भगवत्-स्वरूप माननेका नियम है, तो शुद्ध-वैष्णवोंका प्रश्न ही क्या?' उनके लिये शास्त्र-वाक्य हैं—'*यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रासादोः, यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि। ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसंध्यं, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥*', '*साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रैः, उक्तस्तथा भाव्यत् एव सद्भिः। किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥*' (श्रीगुर्वष्टकम्, ७ एवं ६) शास्त्रोंमें जो गुरुको भगवान्‌से अभिन्न देखनेकी व्यवस्था दी गयी है, वह 'प्रियत्वेन'—अर्थात् गुरुदेव भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय हैं, इस कारणसे है। शङ्करजीका भगवान्‌से अभिन्नत्व भी इसी सन्दर्भमें है।

गुरु सर्वदेवमय हैं—जितने भी देवता हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी अन्तर्भुक्त हैं, वे श्रीगुरुमें हैं। अर्थात गुरु ब्रह्मा-विष्णु-महेशमय हैं—'*गुरुर्ब्रह्मा*

गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ (गुरु-स्तोत्रम्, शंकराचार्य विरचित)—गुरु ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं और परब्रह्म भी हैं।' श्रील सनातन गोस्वामी प्रभु स्वरचित टीकामें कहते हैं कि 'गुरु परब्रह्मकी मूर्ति हैं।' किन्तु हमें सब समय यह स्मरण रखना होगा कि वे विषय-विग्रह नहीं, आश्रय-विग्रह हैं, सेवक-भगवान् हैं। श्रीगुरुको ब्रह्मा इसलिए कहा गया क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्माजीका कार्य सृष्टि करना है, उसी प्रकार श्रीगुरु भी हमारे हृदयमें भक्ति-बीजको रोपितकर उसका सृजन करते हैं। वे विष्णु इसलिए कहे गये क्योंकि जैसे विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं, वैसे जब तक शिष्यको भगवत्-प्रेम प्राप्त न हो जाये, तब तक श्रीगुरु उसकी भक्तिको पुष्ट करते रहते हैं। गुरु शिष्यके लिये कितना परिश्रम करते हैं, वह हम कल्पना भी नहीं कर सकते! अन्तमें, गुरुदेव शङ्करजीकी भाँति शिष्यके समस्त दुर्दैव अर्थात् अनर्थों और अपराधोंको ध्वंसकर उसको भगवत्-प्रेमके स्तरपर उपस्थित करा देते हैं। इसलिये गुरु ब्रह्मा-विष्णु-महेशमय हैं।

हम लोगोंमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि अनर्थ हैं और इनके अतिरिक्त धामके प्रति, सेवाके प्रति अपराध भी हैं, जो मनुष्यको अधोपतित कर देते हैं। इनमेंसे प्रत्येकको दूर करनेके लिए यथायथ विशेष शक्तिकी आवश्यकता है। इनसे मुक्ति पाना बहुत ही दुर्गम होता है। बहुत परिश्रम करनेपर भी वह उन्मूलन यथोचित रूपमें नहीं होता। किन्तु एकमात्र गुरु-सेवासे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इत्यादि समस्त अनर्थ और अपराध समूल उन्मीलित हो जाते हैं! केवल गुरु-सेवासे! परन्तु गुरु भी उच्चकोटिका होना चाहिये।

भगवद्भक्ति—कृष्ण-प्रेमके बिना कदापि बद्धजीवकी गति नहीं हो सकती। उसकी विमुखता भक्तिके द्वारा ही दूर होगी और तभी वह अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित होगा, उसका जीवन आनन्दमय होगा। किन्तु यह भक्ति उसे मिलेगी कहाँसे? उनसे मिलेगी जो कि उस परजगतके हों और, वह साथ-ही-साथ इस जगतके भी व्यक्ति हो। स्वयं भक्ति गोलोक वृन्दावनमें रहती है। वह सन्वित और ह्लादिनीकी सारवस्तु है और भगवान्के नित्य-सिद्ध परिकरों, जैसे नन्दबाबा-यशोदा मैया, ललिता-विशाखा, बलदेवजी-मधुमङ्गल-श्रीदामजी, रक्तक-पत्रक इत्यादिमें रहती है। यदि भक्ति वहाँपर रहती है, तो इस जगतके निवासियोंको कैसे मिलेगी? उस व्यक्तिसे मिलेगी जो वहाँपर भी रहते हैं और यहाँपर भी, तथा जो वहाँकी वस्तु यहाँ वितरित कर सकते हैं। जो उन भगवत-परिकरोंके अत्यन्त प्रिय हैं, स्वरूपतः उनके ही हैं और कृष्णकी इच्छासे, राधाजीकी इच्छासे इस जगतमें आते हैं, उनके द्वारा वह भक्ति प्राप्त हो सकती है। भगवान् इस प्रयोजन हेतु या तो स्वयं अवतीर्ण होते हैं अथवा अपनी शक्तिको भेजते हैं। गुरुदेव उनकी करुणा-शक्ति हैं—*'संसार-दावानल-लीढ-लोक, त्राणाय कारुण्य-घनाघनत्वम्। प्राप्तस्य कल्याण-गुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥* (श्रीगुर्वष्टकम्, १)—गुरुदेव भगवान्के 'कारुण्यघनाघनत्वम्' अर्थात कृपाकी घन-अति-घन मूर्ति हैं।' भगवान्की कृपाकी मूर्ति जब इस जगतमें अवतीर्ण होती है, तब उसको श्रीगुरु कहते हैं। वे हैं तो कृष्णकी शक्ति, किन्तु आचार्यके रूपमें कभी पुरुष बनकर आते हैं, तथा कभी शक्तिके रूपमें भी आते हैं, जैसे जाह्नवादेवी, शचीमाता, हेमलता ठाकुरानी, मालिनी देवी, गङ्गामाता गोस्वामिनी इत्यादि।

यदि कैलाशके जलको महासागर जाना हो, तो वह कैसे जायेगा? कोई उसे लायेगा, तभी सम्भव है। जैसे—भागीरथजी गङ्गाजीकी धाराको महासागर तक ले आये और वह आज तक प्रवाहित हो रही है। ऐसे ही गुरु-परम्पराकी धारा है। वह धारा श्रीकृष्णसे आरम्भ होकर गुरु-परम्पराके माध्यमसे भगवत-प्रेमको इस जगतमें प्रवाहित करती है, तथा गुरु-परम्पराकी

लाभ नहीं होगा। वे दोनों अर्थात् गुरु और शिष्यको कनक, कामिनी, प्रतिष्ठा इत्यादि अनर्थ तो मिल जायेंगे, किन्तु कृष्ण-प्रेम नहीं मिलेगा। अतएव शुद्ध गुरु भगवान्‌की कृपासे ही मिलते हैं।

यथार्थ गुरु कौन है?

श्रीगुरु आश्रय-विग्रह हैं। मूलतः दो आश्रय-विग्रह हैं—श्रीबलदेव प्रभुजी और श्रीमती राधिकाजी। ये दोनों चित्-स्वरूप कृष्णसे निकलते हैं—बलदेव प्रभुजी सन्धिनी-शक्तिके रूपमें और श्रीमती राधिकाजी ह्लादिनी शक्तिके रूपमें। ये दोनों धाराएँ कृष्णसे निकलकर पुनः उन्हींमें समायुक्त होती हैं। जो उन्हीं दोनोंके आश्रयमें राधाकृष्णकी सेवाकी शिक्षा देते हैं, वही आचार्य हैं। जो गुरु यह शिक्षा नहीं देता, वह गुरु ही नहीं है।

हमारे ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायकी अन्यान्य सम्प्रदायोंसे यह एक विशेषता है—'*निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्धै, या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया। तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।*' (श्रीगुर्वष्टकम्, ६) अन्य किसी भी सम्प्रदायमें राधाकृष्णकी लीलाओंकी इतनी सेवा नहीं है। गुरुका गुरुत्व इसीपर निर्भर करता है। श्रीगुर्वष्टकके श्लोकोंमें श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर श्रीगुरुके क्रमशः गुरुत्वका वर्णन करते हैं—'*महाप्रभोः कीर्तन-नृत्य-गीत, वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन। रोमाञ्च-कम्पाश्रु-तरङ्ग-भाजो, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।*' (श्रीगुर्वष्टकम्, २) जो एक ओर स्वयं श्रीविग्रहका अर्चन-पूजन करते हैं—'*श्रीविग्रहाराधन-नित्य नाना-, शृङ्गार तनमन्दिरमार्जनादौ। युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।*'(श्रीगुर्वष्टकम्, ३) और —'*निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्धै, या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया। तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।*'— तक चले जाते हैं, यही उनका गुरुत्व है। जो इन सबकी शिक्षा नहीं दे सकते, उन्हें रूपानुग आचार्य तो कहा ही नहीं जा सकता।

रूपानुग किसे कहते हैं?

हम सब लोग अपने गुरुवर्गको रूपानुग कहते हैं। रूपानुग माने क्या? श्रीरूप गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा और प्रेरणासे भक्तिरसामृत-सिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि, ललित-माधव, विदग्ध-माधव इत्यादि सब ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थोंका पालन और अनुशीलन करनेवाले ही रूपानुग नहीं हैं! वे रागानुग हो सकते हैं, राग-भक्तोंमें वे—दास्य, सख्य, वात्सल्य अथवा मधुर-रसके भक्तोंमें श्रेणित हो सकते हैं। किन्तु रूपानुग कहनेसे क्या बोध होता है? श्रीरूप गोस्वामीजी अन्तरसे क्या थे? वे महाप्रभुजीकी लीलामें, महाप्रभुजीके परिकरके रूपमें श्रीरूप गोस्वामी हैं और श्रीश्रीराधाकृष्णके परिकरके रूपमें श्रीरूपमञ्जरी हैं। श्रीरूपमञ्जरीकी अपनी सेवा क्या है? वे राधा-पक्षीय, प्राणसखी, मञ्जरी होकर युगलकी सेवा करती हैं। वे युगलकी सेवा तो करती हैं, किन्तु युगल-सेवामें भी उनका अभिनिवेश, उनकी प्रवृत्ति किस ओर है? राधाजीकी ओर झुकी हुई है। यदि एक ओर कृष्ण बुला रहे हों और दूसरी ओर राधाजी बुला रही हों, तो रूपमञ्जरी किस ओर जायेंगी? कृष्णकी ओर भङ्गीकर, सीधा राधाजीकी ओर चली जायेंगी। ये हैं रूपमञ्जरी! यदि कृष्ण क्रीड़ामें हार जायेंगे, तो सब (निजानुग) सखियोंके साथ सर्वप्रथम ताली बजानेवाली और कृष्णको चिढ़ानेवाली रूपमञ्जरी होंगी। इस प्रकार वे राधाजीकी सेवा करती हैं।

इसलिये श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामीने '*त्वम् रूपमञ्जरि सखि प्रथिता पुरेऽस्मिन्*' (विलाप-कुसुमाञ्जली,१) इत्यादि श्लोकमें उनकी वन्दना की है। रुपानुगका अर्थ क्या है? जो एकमात्र श्रीरूप गोस्वामीके आचार-विचार और उनकी स्वरूपगत सेवाको जानकर अपने शिष्योंके हृदयमें भी उस सेवाकी वासना प्रदान करते हैं, उन्हें कहते हैं रुपानुग आचार्य। यही हमारे सम्प्रदायका वैशिष्ट्य है।

धारामें स्थित गुरु उस प्रेमको लेकर जगतके जीवोंको प्रदान करते हैं। यही श्रीगुरुका प्रधान कार्य है। यदि कोई गुरु यह कार्य न कर सके, तो वह गुरु नहीं है। प्रेम देना ही गुरुका गुरुत्व है।

सद्गुरुके लक्षण

कर्मी, ज्ञानी, योगी, तपस्वी इत्यादि सभी गुरु करते हैं, किन्तु गुरुका लक्षण क्या है? रुपानुगत्व ही गुरुत्वका लक्षण है, गुरुत्वका उत्कर्ष है। साधारण रूपमें, परमार्थकी शिक्षा देनेवाला कोई मध्यम अधिकारी भी चाहे उसे शास्त्र-ज्ञान न हो, यदि उसमें भगवद्भक्ति है और वह सरल, निष्कपट है, तो वह गुरु है। यदि किसीके समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत होनेपर भी उसे भगवान्‌की अनुभूति नहीं है, तो वह गुरु नहीं है। स्वयं जिसके हृदयमें ही भगवान् नहीं, वे अपने शिष्यके हृदयमें राधाकृष्णको कैसे प्रतिष्ठित कर सकता है? अतएव भगवत्-अनुभूति सम्पन्न होना ही गुरुका प्रधान लक्षण है और शास्त्र-ज्ञान होना गुरुका गौण लक्षण। बहुत-से लोग शास्त्र-ज्ञानकी ओर आकर्षित हो जाते हैं, किन्तु भगवदनुभूतिकी ओर ध्यान नहीं देते। इसलिये उन्हें गुरु करनेपर भी, और वैसे भगवदनुभूति-विहीन गुरुको शिष्य करनेपर भी विशेष लाभ नहीं होता। गुरुकी भगवदनुभूति कैसी हो? जैसा हमारे सम्प्रदायका वैशिष्ट्य है—वह रूप गोस्वामीके विचारोंमें परिपक्व और उनमें अनुभूति सम्पन्न हो।

कृष्ण-प्रेम प्रदान करनेवाले श्रीगुरुके लिये—'*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्। शाब्दे परे च निष्णातम् ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥*' (श्रीमद्भा.११/३/३१)' और '*तद्विज्ञानार्थम् स गुरुमेवाभिगच्छेत्। समित्पाणिः श्रोत्रियम् ब्रह्मनिष्ठम्॥*' (मुण्डक उप.१/२/१२)—ये दोनों श्लोक हैं। इनमें गुरुके लक्षण बतलाये गये हैं। गुरु समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत हों। तथापि यदि उसे भगवान्‌की अनुभूति नहीं है, तो वह गुरु नहीं है और उसका वह समस्त शास्त्र-ज्ञान भी निरर्थक है। किन्तु यदि गुरुदेवको परमहंस श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके समान शास्त्र-श्लोक कण्ठस्थ नहीं हैं, परन्तु परब्रह्मकी अनुभूति है—इसी कारण वे गुरु हैं।

भागवत-परम्परा क्या है?

श्रील प्रभुपादने भागवत-परम्पराका उत्कर्ष बतलाया है। भागवत-परम्परा क्या होती है? श्रील प्रभुपादने मात्र अनुभव-सम्पन्न महात्माओंको ही इस परम्परामें स्वीकार किया, अन्योंको नहीं। इसी कारणसे सहाजिया लोग रुष्ट होते हैं कि—'उन्होंने हमारे गुरुका नाम इस भागवत-परम्परामें उल्लेख नहीं किया! उन्होंने श्रील जगन्नाथदास बाबाजीके बाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर तथा, उनके बाद श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका नाम ले लिया, किन्तु बाकी सबको छोड़ दिया? हम लोगोंके गुरुवर्ग तो बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा थे!' इसलिये वे लोग रुष्ट होकर श्रील प्रभुपादके द्वारा उल्लिखित गौड़ीय-वैष्णव-परम्परा धाराको नहीं मानते हैं।

श्रील प्रभुपादने कहा है कि 'भागवत-परम्पराको मानना पड़ेगा। जो सिद्ध-महापुरुष हैं, उन्हींसे प्रेम प्राप्त होगा। यद्यपि मध्यम अधिकारी कुछ दिशा-निदर्शन कर सकते हैं, तथापि जिसके पास प्रेम है, प्रेम-सिद्धि है, वही तो प्रेम देगा! अन्यथा कौन देगा?' इसी कारणसे अपने गुरुका अनुसरण करनेवाले नारदजी इत्यादिके द्वारा हमपर दृष्टिपात करनेमात्रसे हमारी सिद्धि हो जायेगी। किन्तु उनके अनुगामीगण अपने सङ्गके माध्यमसे मात्र शास्त्रोंके विचार देकर हमें भक्तिमें प्रतिष्ठित करवायेंगे। पुनः, तदानुगामीगण वर्त्म-प्रदर्शक गुरुके रूपमें—'चलिए हमारे गुरुजी, हमारे आचार्योंके पास चलिए—इस प्रकार हमें उनके पास ले जायेंगे। और, उनसे न्यून स्तरवाले जो कि आचार-विचारमें प्रतिष्ठित ही नहीं हैं और न ही उन्हें सिद्धान्तोंका कोई ज्ञान है, वे यदि शिष्य करने लगे, तो उन गुरुओंसे कुछ भी

प्रथमतः नारदजी आये। उन्होंने दास्य-रस इत्यादिकी सेवा दी, उस सेवाका प्रचार किया। तदुपरान्त अन्यान्य बड़े-बड़े आचार्य ही नहीं, अपितु स्वयं भगवत्तत्त्व भी आये। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने जो प्रदान किया, वे उसके सामने तो क्या, उसके आस-पास तक भी नहीं आये। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूप गोस्वामीके हृदयमें स्वाभाविक रूपसे उन वस्तुओंकी प्रेरणा कर दी। कहाँ? प्रयागमें। तथा, जो बाकी रह गया, वह *'प्रियः सोऽयम् कृष्ण सहचरि'* (चै.च.मध्य.१/७६) श्लोकके माध्यमसे सर्वस्व उनके अन्तरमें दे दिया। जो उन वस्तुओंको अपने हृदयमें लेकर अपने शिष्योंके हृदयमें दे सकेगा, वह यथार्थमें हमारे रूपानुग गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका आचार्य है।

श्रीमन्महाप्रभुको महावदान्य कहते हैं, किन्तु श्रील प्रभुपादने कहा कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर महा-महावदान्य हैं। क्यों? क्योंकि जिन वस्तुओंको श्रीमन्महाप्रभुने प्रदान किया, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उन्हें नवीन स्वर्ण थालमें नवीन रूपसे परिवेषण किया। अतएव श्रील भक्तिविनोद ठाकुर महा-महावदान्य हैं। श्रील प्रभुपादजी कैसे हैं? उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, गुरु-परम्परा, श्रीमन्महाप्रभु और श्रीश्रीराधाकृष्णको प्रकाशित कर दिया! ऐसे श्रील प्रभुपादको प्रकाशित करनेवाले हमारे गुरुवर्ग धन्य हैं। हम अपने सौभाग्यपर गर्व करते हैं कि हम श्रील प्रभुपादके ऐसे परिकारों, उनके गणोंके निकटमें भी आये। किन्तु मेरा यह दुर्भाग्य है कि उनकी उन[दिय] वस्तुओंको मैं नहीं ग्रहण कर सका। इन सब महापुरुषोंने उसे थोड़ा-थोड़ा ग्रहण किया है और पूज्यपाद वामन महाराजजी भी उसी कड़ीमें एक हैं। हम लोगोंका सौभाग्य है कि हमें ऐसे महापुरुषोंका सङ्ग मिला। हम यदि उनके विचारोंको ग्रहण करके भगवद्भक्ति-राज्यमें प्रवेश कर सकें, तो हमारा अहो-भाग्य होगा।

गुरु-सेवा कैसी होनी चाहिए?

इस विषयमें श्रील नरोत्तमदास ठाकुरने कहा है—*'गुरु-मुखपद्म-वाक्य चित्तेते करिय एक्य, आर न करिह मने आश।'* इसमें 'एक्य' शब्दका क्या अर्थ है? इसके दो अर्थ होंगे। प्रथम अर्थ है—जो वाणी गुरु-मुखसे निकली है, शिष्य एकमात्र उसीको ही सर्वस्व समझकर उसका पालन करे। द्वितीय अर्थ होगा—वह शास्त्र, गुरु और वैष्णवोंके वचनोंको एक करके पालन करे, क्योंकि श्रील नरोत्तमदास ठाकुरने यह भी लिखा है—*'साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य तिनेते करिया एक्य।'* अर्थात् शास्त्र जो कहते हैं, वैष्णव जो कहते हैं और गुरु जो कहते हैं—तीनोंको एक करके लेना होगा। यदि उनमें परस्पर कोई भेद है, तो जिस विचारमें दो तत्त्व एक समान बोलते हैं, उसे ग्रहण करो। यदि तीनोंका एक ही विचार है, तो संदेहका कोई प्रश्न नहीं है। किन्तु यदि तीनोंमें-से, दो एक पक्ष लेते है और तृतीय अन्य पक्ष लेता है, तो उसे समझनेमें हमारी ही बाधा है।

उदाहरणके लिये—यदि श्रील प्रभुपाद एक सिद्धान्त कहें, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अन्य और शास्त्र श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा कथित सिद्धान्तका समर्थन करें, तो क्या श्रील प्रभुपादके वचन गलत हैं? नहीं। वे सिद्ध महापुरुष हैं, इसलिए वे जो भी कहते हैं, पूर्णतः ठीक है। हम ठीकसे श्रील प्रभुपादके वचनोंको समझ नहीं पाते हैं। यह जगद्विख्यात है कि श्रील प्रभुपाद सिद्धान्त-परिपक्व एवं भगवदनुभूति-सम्पन्न महापुरुष हैं। वे शास्त्रोंका जो अर्थ करते हैं, वह एकदम निर्भूल है। वे जिस आलोक(दृष्टिकोण)से शास्त्रोंके अथवा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके वचनोंको कह रहे हैं, उसका अर्थ हमें समझमें न आनेपर भी वही ठीक है।

अतएव गुरुकी सेवा विश्रम्भ रूपसे करनी होगी। विश्रम्भ सेवक होनेके लिए हमें उसी स्तर तक उठना होगा, जिस स्तरपर गुरुदेव हैं। 'देवम्

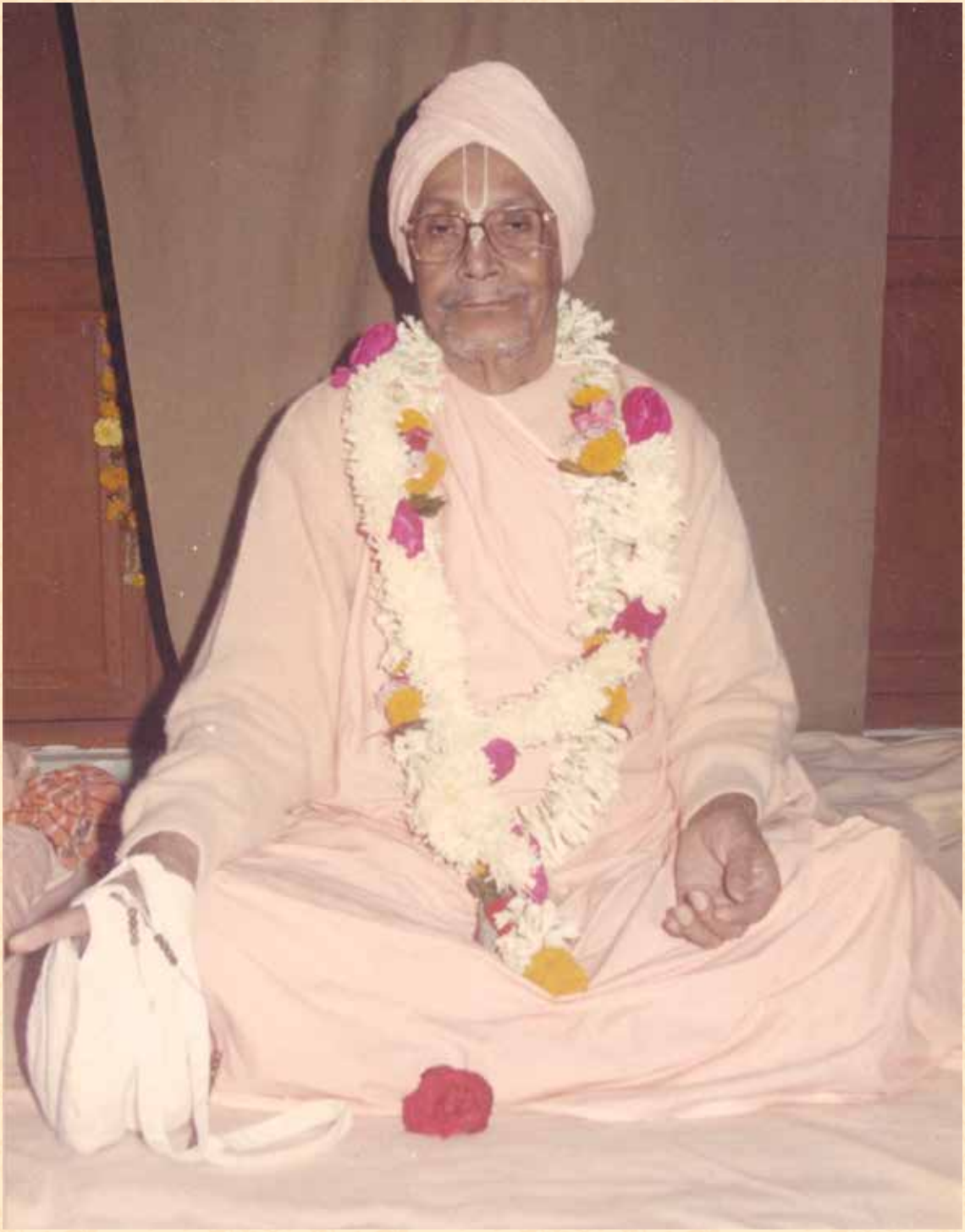

भूत्वा देवम् यजेत्।' (तन्त्र) भगवान्‌की पूजा करनेके लिए भगवान्‌के समान बनना पड़ेगा और गुरुकी सेवा करनेके लिए गुरुके विचारोंके निकटतम होना पड़ेगा—उनके विचारोंको समझना पड़ेगा कि वे क्या चाहते हैं? अतएव जिस प्रकार अदेव होकर देवताकी पूजा नहीं की जा सकती, वैसे ही गुरदेवके भी विचारोंको समझे बिना उनकी सेवा नहीं होगी—'*न्यासस्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु तम् यजेत्।*' (गन्धर्व-तन्त्र, ९/२) यदि विश्रम्भ रूपसे गुरुकी सेवा की जाय, तब गुरु प्रसन्न होंगे।

सर्वोत्तम् अभीष्ट

कुछ लोग भव-सागरसे पार होनेकी कामना करते हैं, कुछ मोक्ष, अन्य कुछ वैकुण्ठ, द्वारका, मथुरा इत्यादिकी कामना करते हैं। कुछ लोग श्रीदाम-सुबल आदिका आनुगत्य करना चाहते हैं, कुछ नन्दबाबा-यशोदा मैयाका, और कुछ सखियोंका आनुगत्य चाहते हैं। किन्तु हम लोगोंके गुरुवर्ग क्या चाहते हैं? श्रीरूप गोस्वामीके चरणोंकी धूलीकी सेवाकी प्राप्ति। यही सर्वश्रेष्ठ अभीष्ट है। '*आददानस्तृणम् दन्तैरिदम् याचे पुनः पुनः। श्रीमद्रूप-पदाम्भोज-धूली स्याम् जन्म-जन्मनि॥*' (दानकेली-चिन्तामणि, १७५) मैं समझता हूँ कि जीवके लिये श्रीश्रीराधाकृष्णकी सेवाकी प्रार्थनासे भी श्रेष्ठ यही सर्वाधिक सुन्दर और उत्तम अभिलाषा है, इससे बढ़कर अन्य कोई अभिलाषा नहीं है।

श्रील वामन गोस्वामी महाराजका प्राकट्य, कुल एवं मठमें आगमन

मैं पूज्यपाद वामन महाराजके श्रीचरणोंमें दो-एक पुष्पाञ्जली देना चाहता था, किन्तु मेरे पुष्प उन्हें पुष्पाञ्जली देनेके योग्य नहीं हैं। तथापि मैं उनके विषयमें दो-एक बातें अवश्य कहूँगा। इस ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-रुपानुग गुरु-परम्परामें श्रील प्रभुपादके बहुतसे परिकर हुए और उन्होंने बहुत अल्प कालमें ही श्रीमन्महाप्रभुकी आचरित और प्रचारित वाणीका प्रचार किया। उन परिकरोंमें-से नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं। पूज्यपाद वामन महाराज इनके शिष्य हैं और यही इनका परिचय है। किसी व्यक्तिका परिचय उसके वंश—उसके माता-पिता इत्यादि द्वारा होता है, किन्तु इनका परिचय यह है कि ये ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके प्रधान शिष्योंमें अन्यतम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके शिष्य हैं। किन्तु यह भी उनका बाह्य परिचय है। उनका आन्तरिक (सिद्ध-स्वरूपका) परिचय जब कभी वे देंगे, तब ज्ञात होगा।

उनका स्थूल परिचय है कि उनका प्राकट्य वर्तमान कालके पूर्वी बंगालके खुलना जिला, जो उस समय भारतसे संलग्न था, उसके पिलजंग ग्राममें आजसे लगभग ७३ या ७४ वर्ष पहले हुआ था। इनकी माताजी, श्रीयुक्ता भगवती देवी, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी अत्यन्त गुरु-निष्ठ शिष्या थीं। वे अतिशय साधवी, धार्मिक प्रवृत्तिकी विदुषी एवं बड़ी प्रभावशाली महिला थीं; वे परिवारके सभी सदस्योंपर शासन करती थीं। इनके पिताजी, सतीशचन्द्र दासाधिकारी और अन्य सभी सदस्य गुरु महाराजजीके शिष्य थे। किन्तु उनमें सर्वप्रथम इनकी माताजीने ही श्रील प्रभुपादका चरणाश्रय ग्रहण किया था।

अपने गृहाश्रमके निवास-कालमें श्रील महाराजके पिताजीके अनुज, पूज्यपाद वामन महाराजके काका (चाचा), पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराजजीका, अनुज होनेपर भी अधिक प्रभाव था। वे बड़े प्रभावशाली, सुशिक्षित, अमीन, सत्यवादी, सुप्रसिद्ध और ईमानदार व्यक्ति थे। वे एक समय अपने विषयमें बता रहे थे—"मैंने एकबार कहींसे मृदङ्ग और '*भूलिया तोमारे संसारे आसिया*'—इस कीर्तनकी

ध्वनि सुनी। उसमें अधिक स्वर नहीं था और मृदङ्गमें भी ताल नहीं थी।" उस समय तक गौड़ीय मठमें अधिक मठवासी सुर इत्यादि नहीं जानते थे, किन्तु उनके पदोंमें लालित्य और भाव होता था। उस खेदमय कीर्तनमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने बद्धजीवकी बाल्यावस्थासे वृद्धावस्था तककी समस्त विडम्बनाओंका वर्णन किया है। उन्होंने आगे कहा—"उसे सुनकर मैंने निर्णय कर लिया कि अब मैं और यहाँ नहीं रहूँगा, मैं जाऊँगा। जहाँ-जहाँ कीर्तन और हरिकथा होती, मैं वहाँ-वहाँ जाने लगा। अन्तमें मैंने नौकरी छोड़ दी और अपने ज्येष्ठ-भ्राता, सतीशचन्द्र दासाधिकारीजीको अपनी सम्पत्ति देकर मठमें चला आया।"

पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज श्रील प्रभुपादके शिष्य थे और श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीसे संन्यास प्राप्त थे। वे गुरु-महाराजजीसे अत्यन्त प्रीति करते थे और उस विषयमें बड़े सुदृढ़ थे। वे अन्त तक गुरु-महाराजके साथमें ही रहे और उन्हींके साथ प्रचार किया।

पूज्यपाद वामन महाराजके बल्यकालमें उनकी माताजीने इनसे पूछा, सन्तोष! क्या तुम अपने चाचाके पास जाओगे?' इन्होंने कहा, 'हाँ, जाऊँगा'। बस, वे इन्हें बाल्यावस्थामें, आठ या नौ वर्षकी आयुमें ही, पूज्यपाद नारसिंह महाराजजीके पास ले आयीं। उस समय हमारे गुरु-महाराजका मायापुरमें बहुत प्रताप था। पूज्यपाद नारसिंह महाराजके कहनेपर वामन महाराजजीकी माताने इन्हें अस्मदीय गुरुपादपद्म, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके चरणोंमें लाकर सौंप दिया। तबसे इनके माता-पिता, भाई-बन्धु, गुरु, शिक्षा-गुरु और सर्वस्व हमारे गुरुजी ही थे।

इनका पालन श्रीनरहरि प्रभु करते थे—जो उस समय गौड़ीय मठकी माताके समान थे। वे रातमें सभी बच्चोंके सो जानेपर लालटेन लेकर परीक्षण करते थे और किसी बच्चेके द्वारा नींदमें शैय्यापर मूत्र त्याग करनेपर भी उसे साफ कर देते थे। वे प्रातः बच्चोंको जगाते, उन्हें पढ़ाते-लिखाते, खिलाते-पिलाते और स्नेह करते थे। इसीलिये उस समय मठमें इतने मठवासी थे। सांसारिक सम्बन्धी जितना स्नेह देते हैं, यदि गुरु उससे अधिक स्नेह दे, तभी तो शिष्य उसके प्रति आकर्षित होंगे! अतः गुरुको उतना स्नेहशील होना चाहिये।

पूज्यपाद वामन महाराज श्रील प्रभुपादजीके समयमें, सन् १९३० में, बाल्यावस्थामें मठमें आये थे। मैं वामन महाराजके सोलह वर्षके अन्तरके बाद, सन् १९४६में, मठमें आया। ये मुझसे सोलह वर्ष पहलेसे ही गुरु-महाराजकी सेवा करते आ रहे हैं और उनके विचारोंको सुनते आ रहे हैं। श्रील प्रभुपादके बहुत-से सुमहिमाशाली एवं प्रसिद्ध शिष्य भी इनके बाद श्रील प्रभुपादके पास आये थे। ये गौड़ीय मठमें बहुत पुराने व्यक्ति हैं—गौड़ीय मठके काकभुषुण्डी हैं।

शिक्षा

गुरु-महाराजजीने सन्तोषको अपने पासमें रखकर इन्हें पढ़ाया-लिखाया और इनका सम्पूर्ण पालन किया। उन्होंने इन्हें मायापुरमें भक्तिविनोद इन्स्टिट्यूटमें भर्ती कर दिया। सन्तोष अपनी कक्षाकी परीक्षामें सर्वदा प्रथम या द्वितीय स्थान ही प्राप्त करते थे।

गुरु-महाराजका एक विशेष विचार था। सभी स्कूलोंमें रविवारकी छुट्टी होती थी, किन्तु जब भक्तिविनोद इन्स्टिट्यूट स्थापित हुआ, तो सरकारके द्वारा आपत्ति करनेपर भी उन्होंने कहा, 'हमारे स्कूलमें, पाश्चात्य-वासियोंकी संस्कृतिके अनुसार रविवारको नहीं, सनातन भागवत-परम्पराके विचारोंके अनुसार एकादशीको छुट्टी होगी।' सामान्यतः स्कूलोंमें धर्मका विषय ऐच्छिक या वैकल्पिक-विषय होता है। किन्तु गुरु-महाराजने भक्तिविनोद इन्स्टिट्यूटमें धर्म-विषयको सभी छात्रोंके लिए अनिवार्य-विषय रखा और कहा,

'हमारे स्कूलमें कोई छात्र, सभी विषयोंमें उत्तीर्ण होनेपर भी, यदि धर्मके विषयमें अनुत्तीर्ण होगा, तो हम उसे सम्पूर्ण रूपसे अनुत्तीर्ण कर देंगे।' उन्होंने वैसा ही किया। उससे क्रमशः मुसलमानों और अन्य लोग, जिनके बच्चे गुरु-महाराजने अनुत्तीर्ण किये थे, उन्होंने इसके विषयमें सरकारको आवेदन दिया। अन्ततः हमारे गुरु-महाराज की ही विजय हुई। इसी कारणसे जिन्होंने भी भक्तिविनोद इन्स्टिट्यूटमें शिक्षा ग्रहण की, चाहे वे परवर्ती कालमें गृहस्थ क्यों न हो गये हों, तथापि सभी आजीवन धार्मिक प्रवृत्तिके ही रहे।

गुरु-महाराज सन्तोषको कैसे पढ़ाते थे? इनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि कोई भी विषय एकबार पढ़ने मात्रसे इनके स्मृति-पटलपर अङ्कित हो जाता था। गुरु महाराजजी इनसे कहते थे कि, 'यदि तू आज एक श्लोक याद करेगा, तो मैं तुझे एक लेमन-जूस (टॉफी) दूँगा।' ये तो एक ही दिनमें दस-पन्द्रह श्लोक कण्ठस्थकर दस-पन्द्रह टॉफी ले लेते थे। गुरु-महाराज इन्हें बचपनसे ही बहुत स्नेह करते थे।

मैं समझता हूँ कि वर्तमान कालमें पूज्यपाद वामन महाराजके अतिरिक्त उस समयका विरला ही कोई 'मेट्रिक-पास' (दसवीं कक्षामें उत्तीर्ण) मठवासी है। उनके अतिरिक्त सब 'मेट्रिक-पास' मठवासी मठ त्यागकर चले गये। अतः वर्तमानमें पूज्यपाद वामन महाराज किसी भी मठवासीको शिक्षा अर्जन करवानेके पक्षमें नहीं हैं। मैं परवर्ती कालमें मठमें आया था, इसलिये सबको पढ़ने-लिखने (शास्त्र-अध्ययन हेतु भाषा-ज्ञान इत्यादि ग्रहण करने)में नियुक्त करता हूँ। किन्तु वे कहते हैं, 'पढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, पढ़कर कोई मठमें नहीं रहेगा।'

यथार्थमें, मैंने देखा कि गुरु-महाराजजीने और बादमें मैंने भी, दया-परवश होकर जितने लोगोंको सुशिक्षित करवाया, लगभग वे सभी विदायी ले चुके हैं। इसी कारणसे गुरु-महाराजने मठवासियोंको शिक्षा-अर्जन करवाना बन्द कर दिया था। जो मठवासी

पूर्वाश्रमसे शिक्षित होकर मठमें आये हैं, उनकी तो विद्या सेवामें लग जायेगी, किन्तु जो मठमें आकर नवीन रूपमें शिक्षा अर्जितकर कुछ करेंगे, वे प्रायः ही मठ छोड़कर चले जाते हैं। पूज्यपाद वामन महाराजजी इस विषयमें अनुभवी हैं, इसलिये सब जानते हैं।

बाल्यकालमें मठवास एवं वैष्णव-सेवा

सन्तोष स्कूल तो जाते ही थे, साथ ही, स्कूल जानेसे पहले वैष्णवोंके प्रसाद-सेवन हेतु पत्ता काटकर लाते थे। जब वैष्णवगण प्रसाद ग्रहण करने बैठते, ये उन्हें पत्ते, नमक, नीम्बू और जल परोसते और उनके बैठनेके आसन इत्यादि स्वयं बिछाते थे। वैष्णवोंके प्रसाद पा लेनेके बाद आसान एकत्रकर उस स्थानको जल, मार्जनी इत्यादिसे परिष्कार करते और प्रसादी पत्तल इत्यादि एकत्रकर फेंकते थे। कुछ समयके बाद ये तरकारी (सब्ज़ी) अमानिया करना—जो वैष्णव-मठोंकी रसोईकी प्रधान सेवा होती है—उसे भी करने लगे। वह सेवा सन्तोष इतनी गतिसे करते थे, जिसका अनुमान करना सहज नहीं है। ये एक ओर अन्य सेवा संभालते और दूसरी ओर यथावत एक आकार और परिमापकी तरकारी भी अमानिया करते थे। परवर्ती कालमें भी, जितने समयमें मैं थोड़ी-सी तरकारी अमानिया करता, उतने समयमें ये समग्र अमानिया सेवा पूर्ण कर देते थे। मुझे ये सब सेवाएँ नहीं आती थी, मैं तो मठमें आनेके बाद ही कुछ सीखा था। किन्तु पूज्यपाद वामन महाराजजी बचपनसे मठमें रहनेके कारण, वैष्णवोंकी सेवा कैसे की जाती है, उनकी सब सेवाएँ करना भलीभाँति जानते हैं। स्कूलमें पढ़ते समय ही, रातमें जब सभी वैष्णव शयन कर रहे होते, वे उस समय श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुके साथ पयखाना भी साफ करते थे। पूज्यपाद वामन महाराज भक्ति-राज्यकी बहुत-बहुत कठिन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हैं। ऐसी सेवाएँ करके देखो ये कैसे बने!

हरिनाम एवं दीक्षा

सन्तोषके द्वारा मेट्रिककी शिक्षा पूर्ण करनेके कुछ काल बाद श्रील प्रभुपाद अप्रकट हो गये। इन्हें श्रील प्रभुपादजीसे हरिनाम प्राप्त हुआ था। किन्तु सन्तोष हृदयमें गुरु-महाराजके द्वारा ही प्रभावित होकर परमार्थ-राज्यमें जुड़े थे। इन्होंने प्रारम्भसे ही अपना हृदय गुरु-महाराजको दे दिया था, गुरु-महाराजके साथ रहकर उनकी सेवा करते थे, इसलिये गुरु-महाराज ही इनके सर्वस्व थे। गुरु महाराजने ही इन्हें हरिनाम, दीक्षा और बादमें, संन्यास भी दिया। दीक्षाके उपरान्त गुरु-महाराजने इनका नाम रखा सज्जन-सेवक ब्रह्मचारी।

गुरु-निष्ठा

पूज्यपाद वामन महाराजकी गुरु-निष्ठा कैसी थी? जिस समय गौड़ीय-गगनपर विपत्तियोंके मेघ घिर गये, सब छिन्न-भिन्न होने लगा, मठवासी अपने-अपने पूर्वाश्रमोंमें लौटने लगे, मामला-मुकदमा चलने लगा, गुरु-महाराजके साथ श्रीनरहरि सेवा विग्रह प्रभु, श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीकृष्णदास बाबाजी इत्यादि—प्रभुपादके लगभग तीस-पैंतीस निकटतम जनोंको मिथ्या आरोपके कारण कारागृह जाना पड़ा, उस समय छोटे-से सज्जनसेवक अकेले ही फाईलें लेकर चारों ओर वकीलोंके पास आवागमन करते रहते और उन्हें वास्तविक वृतान्त, तथ्य, युक्ति आदि समझाते थे। यद्यपि सामान्यतः उनके समान अल्पायुके बालकके लिये किसी वकीलको समझाना असम्भव है, किन्तु ये ही समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे। साथ ही, बाज़ारसे समग्र भोग-सामग्री क्रय करना, कारागृहमें अवस्थित सभी गुरुवर्गोंके लिए रन्धन करना, कारागृहमें उन्हें प्रसाद देने जाना, कार्यवाही हेतु वकीलके पास जाना, कोर्ट जाना, फाईलोंको देखना आदि—इतना सब कार्य ये स्वयं ही करते थे। इन्हें एक क्षणका भी अवकाश न

होता। यदि इनके स्थानपर हम होते, तो घर भाग जाते। किन्तु ये गुरुवर्गोंकी समस्त सेवाएँ करते थे; ये सेवा छोड़कर नहीं गये। चूँकि इन्हें ही गुरुवर्गों हेतु रन्धन-सेवा करनी थी, इसलिये गुरु-महाराजने इन्हें कारागृहमें ही दीक्षा प्रदान की।

कुछ दिनोंके बाद गुरु महाराजजी कारावास-मुक्त होकर तेघरीपाड़ा, नवद्वीपमें आये। उन्होंने श्रील प्रभुपादजीके बहुत-से शिष्योंको लेकर बोसपाड़ा लेन, कलकत्तामें गौड़ीय वेदान्त समीतिकी स्थापना की। तदनन्तर उन्होंने नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना की। गौड़ीय वेदान्त समीतिके प्रस्थापन कालमें सज्जन-सेवक ब्रह्मचारी कोलकातामें भी गुरु-महाराजकी सब प्रकारकी सेवा करते और रन्धन करके वैष्णवोंको प्रसाद परिवेषण करना इत्यादि सेवाएँ भी करते थे। समीतिकी स्थापनाके बादसे ये गुरु-महाराजके सभी पत्र और प्रबन्ध लिखना, उनके साथ प्रचारपर जाना, मठवासियोंको देखना-सुनना, गुरु-महाराजकी और सब मठवासियोंकी रसोयी बनाना इत्यादि सभी सेवा-कार्य करते थे। इनके स्थानपर यदि हम लोग होते तो कह देते कि 'हम नहीं करेंगे' या छोड़कर ही भाग जाते।

प्रथम भेंट एवं पारस्परिक सम्बन्ध

गुरु-महाराजजीके पास आनेसे पूर्व मेरा उनसे, पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज अथवा गुरु-महाराजके अन्य किसी भी गणसे परिचय नहीं था, केवल श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीजी, जो परवर्ती कालमें पूज्यपाद श्रीभक्तिकमल मधुसूदन महाराज हुए, उन्हींसे परिचय था। एक बार मैंने उनको एक पत्र भेजा, जिसका उत्तर प्रदान करने हेतु उन्होंने उसे गुरु-महाराजको दे दिया। गुरु-महाराजने उसका उत्तर श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीसे अंग्रेज़ीमें लिखवाकर मुझे भेजा। [क्योंकि श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा श्रील वामन गोस्वामी महाराज हिन्दी-भाषी नहीं थे।] तबसे मेरा गुरु-महाराजसे अंग्रेज़ीमें पत्र-संवाद चलने लगा। मैं श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारीको तो नहीं जानता था, किन्तु, चूँकि मुझे इन्हींकी लिखावटमें गुरु-महाराजके सभी पत्र मिलते, मैं इनकी लिखावटसे परिचित हो गया। इनकी लिखावट स्वर्णाक्षरों एवं मुक्ताक्षरोंके समान थी। गुरु महाराजजी इनसे ही अंग्रेज़ीमें सभी पत्र लिखवाते थे। ये तभीसे मुझे 'तेयारीजी' कहकर सम्बोधित करते थे।

अन्ततः, दिसम्बर १९४६में मैं गृह इत्यादि सर्वस्व परित्याग करके, गुरु-महाराजको बिना कोई पत्र-सूचना दिये, ऐसे ही नवद्वीप चला आया। मैं लाइट-रेलवेसे वर्द्धमानसे कटवा होते हुए रात ग्यारह बजे नवद्वीप स्टेशन पहुँचकर यह सोच रहा था कि मैं अब कहाँ जाऊँगा! वहाँ घोर अन्धकार था और कोई साधन भी नहीं था। इतनेमें मैंने देखा कि दुबले-पतले श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी किसीको सङ्ग लेकर हाथमें लालटेन लिये, 'तिवारीजी' नहीं, "तेयारीजी कहाँ हैं?"—इस प्रकार मुझे खोज रहे थे। वह मेरी इनसे प्रथम भेंट थी। ये मेरे पास आकर हिन्दी और बङ्गला—दोनोंसे मिश्रित भाषामें बोले, 'आप तेयारीजी हैं?' मैंने पूछा, 'आप कौन हैं?' इन्होंने कहा, 'मैं गुरु-महाराजकी ओरसे आपको पत्र लिखता था।' मैंने पूछा, 'आपको मेरे यहाँ आनेके विषयमें कैसे पता चला? मैंने तो कोई सूचना नहीं दी थी!' ये बोले, "गुरु महाराजजीने मुझे भेजा है। उन्होंने कहा था कि आज श्रीमन्नारायण आयेगा।" इस प्रकार ये मुझे खोजकर मठमें ले आये।

चूँकि उस समय तक गुरु-महाराजजीके मठमें और कोई ब्रह्मचारी नहीं था, केवल श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी और श्रीमान् राधानाथ दासाधिकारी (पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी) थे, ये गुरु-महाराजकी सेवा करनेके अतिरिक्त भण्डारी भी थे। मेरे मठमें आनेके बादसे ये ही, माताके समान, मेरी वस्त्रोंसे आरम्भकर खाना-पीना, देखना-सुनना आदि समस्त आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे। मुझे कभी अपनी किसी आवश्यकताके

लिये गुरु-महाराजसे पूछना नहीं पड़ा। आयुमें त्रिविक्रम महाराजजीसे चार-पाँच वर्ष छोटे होनेपर भी ये उनका, मेरा और सभीका प्रतिपालन करते थे, यही पालनकर्ता थे। इनमें कोई भेद-भाव नहीं था। मैं आज लगभग साठ-पैंसठ वर्षसे इन दोनोंके चरणोंकी छत्र-छायामें हूँ तथा इन दोनोंका ऋणी हूँ। मैंने अपने मठवासके प्रारम्भसे ही पूज्यपाद वामन महाराज एवं पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीको अपना शिक्षा-गुरु माना है। तबसे आज तक भी ये दोनों एकसाथमें हैं।

गुणावली

पूज्यपाद वामन महाराजमें समस्त वैष्णवोचित गुण विद्यमान हैं। वे '*तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।*' (श्रीशिक्षाष्टक, ३) —इस श्लोकके मूर्तिमान विग्रह हैं, बहुत ही विनम्र, सरल, लज्जालु, गम्भीर, धीर, तात्विक, सुवाङ्मी और अद्भुत लेखक हैं।

गुरु-महाराजके समयमें मैं और पूज्यपाद वामन महाराज एकसङ्ग ही रहते थे। यदि अन्य कोई भक्त उपलब्ध न होता, तो गुरु-महाराजके साथ प्रचारमें भी वे, मैं और कोई एक भक्त मेदिनीपुर, चौब्बीस परगना और अन्य अनेक स्थानों पर जाते थे। इसलिये मुझे बहुत-से विषयोंको जाननेका अवसर प्राप्त हुआ। पूज्यपाद वामन महाराजकी एक-दो नहीं, बहुत-सी बातें मुझे स्मरण हो रही हैं, अतः मैं कह रहा हूँ, किन्तु उन्हें यथाक्रम मत समझना।

❖ दक्ष

पूर्वकालमें मठमें प्रायः हज़ार व्यक्तियोंवाले उत्सव ही होते रहते थे। जब पूज्यपाद वामन महाराज गुरु-महाराजके द्वारा स्थापित चुँचुड़ा मठकी प्रेसमें प्रकाशनकी सेवा करने लगे और मैं गुरु महाराजजीके साथ प्रचारमें जाने लगा, गुरु-महाराज मेरे बारेमें अन्योंसे कहते थे, 'ये किसीके लिये रसोई नहीं कर सकता, बस, मेरे लिये और दो सेवकोंके लिये ही रसोई बनायेगा।' यह विचारकर कि इसके द्वारा नहीं होगा, गुरु-महाराज मुझे अधिक लोगोंकी रन्धन-सेवा करनेके लिये नहीं कहते थे। मेरे पूर्वाश्रममें मैंने कभी रसोई नहीं की थी, मात्र कुछ दिनोंकी ही रसोई-शिक्षा ग्रहणकर केवल गुरु-महाराजके लिए ही रन्धन करता था, किसी उत्सवमें नहीं।

किन्तु वामन महाराजजी सभी सेवाओंमें निपुण थे। मेरे मठमें आनेके समय भी गुरु-महाराज इन्हें सन्तोष कहकर ही बुलाते थे। वे इनपर इतना विश्वास करते थे कि वे बस एक बार कह देते, 'सन्तोष!' और ये जहाँ भी होते, सीधा गुरु-महाराजके पास आकर खड़े हो जाते थे। यदि गुरु-महाराज रात बारह बजे भी इन्हें दस, बीस, पचास या सौ व्यक्तियोंकी रसोई करनेके लिए कहते, ये झट सब कर देते। एक बार किसी उत्सवमें बहुतसे वैष्णव आये और रसोई करनेके लिए कोई न था। इन्हें १०४ डिग्री ज्वर था। गुरु-महाराजने इन्हें थोड़ा डाँटकर उठाया, 'वैष्णव आये हैं और तुम्हें बुखार आया है? जल्दी उठो!' इन्होंने तत्क्षणात् उठकर १०४ डिग्री ज्वरकी अवस्थामें भी तरकारी आमनिया करके तरकारी रन्धन इत्यादि सभी रसोई-सेवाएँ की, वैष्णवोंको प्रसाद-सेवा करवायी, बरतन, प्रसादी-स्थान इत्यादि परिष्कार कर दिया। आजकल कोई ऐसा करेगा? हम वैसी सेवा करनेकी चिन्ता भी नहीं कर पायेंगे! वामन महाराजजी ऐसे थे। यदि अपना मङ्गल चाहते हो, तो उनका आदर्श ग्रहण करो। वामन महाराजजी बतलाते थे, 'गुरु महाराजजी मुझसे जूता सिलाईसे लेकर चण्डीपाठ तक सभी कार्य करवाते थे।' किन्तु हम यदि भिक्षामें पाँच पैसे भी एकत्र कर लेते हैं अथवा अन्य कोई सेवा करते हैं, तो दूसरी सेवा नहीं करेंगे। ऐसी स्थितिमें हमारा कल्याण कैसे सम्भव है?

गुरु महाराजजीके प्रकाशनका सम्पूर्ण दायित्व पूज्यपाद वामन महाराजपर था, वे गुरुजीके दाहिने

हाथ थे। पत्रिकासे आरम्भकर, गुरु महाराजकी जीवनी इत्यादि गुरु महाराजके जितने भी ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका प्रकाशन पूर्णतः पूज्यपाद वामन महाराजपर निर्भर करता था। गुरु महाराज तो इन्हें मात्र एक बार ही श्रुतलेख (डिक्टेशन) देते और उसके बादमें उसे नहीं देखते थे, बाकी समस्त कार्य ये ही करते थे। गौड़ीय पत्रिका पूज्यपाद वामन महाराज ही चलाते थे। उस समय टेप-रिकॉर्डर इत्यादि यन्त्र नहीं थे। महाराजजी कहाँ-कहाँसे शास्त्रीय-प्रमाण और गुरु महाराजकी अन्य वक्तृताओं तथा लेखों इत्यादिसे प्रकरण खोजकर, और उनके द्वारा उस प्रबन्धको सम्पूर्णकर प्रकाशित करते थे। गुरु महाराज नवद्वीप परिक्रमाके समय इन्हें अधारावाहिक रूपमें, अर्थात् लोगोंसे बात करते हुए भी प्रबन्ध बोलते और ये सब लिखते जाते, किन्तु डिक्टेशन लेते समय वामन महाराजसे कभी कोई भूल-त्रुटि नहीं होती थी।

जब गुरु महाराजजी प्रचार करने जाते, तो इनके ऊपर समस्त दायित्व सौंप देते थे और ये ही समग्र व्यवस्थाएँ करते थे। मैं जब गुरु महाराजके साथ प्रचारमें जाता और उनकी रसोई करता था, तो वामन महाराज कभी-कभी मुझसे भी पहले पहुँचकर रन्धनमें उपयुक्त बरतन, स्थान इत्यादि समस्त उपकरण परिष्कारकर सब सुव्यवस्थित कर देते थे। वे गुरु महाराजके लिये अग्रिम रूपसे ही छाया-चित्र प्रस्तुत करके रखते, गुरु महाराजजीको कहाँ-कहाँ प्रचारपर जाना है और किस स्थानपर कैसा भाषण देना है—ये उसकी सम्पूर्ण योजना तैयार करके रखते और नीचेसे ऊपर तककी सभी सेवाएँ करते थे।

पूज्यपाद वामन महाराजका सर्वाधिक विशिष्ट गुण यह है कि वे समग्र वैष्णव-सिद्धान्तमें परिपूर्णतः अभिज्ञ हैं—सब जानते हैं। तथापि व्रजका कोई प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर वे और पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज मुझे बोलनेका आदेश देते हैं। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजके प्रति मेरा गुरु-भाव होनेपर भी कभी-कभी मेरा उनसे तर्क-वितर्क हो जाता, मैं उनके विचारका खण्डन करता हूँ और वे मेरे विचारका खण्डन करते हैं; मैं श्रीमती राधिकाजीका पक्ष लेता हूँ और वे श्रीकृष्णका पक्ष लेते हैं। एकबार किसी सभामें मेरा और उनका इसी प्रकार तर्क-वितर्क होने लगा। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी युक्तिपूर्वक बोले, 'इस जगतमें राधाजीका भजन करनेके अधिकारी नहीं हैं।' उन्होंने यह प्रमाण भी दिया कि 'हमारे गुरुजीने भी ऐसा करनेकी शिक्षा नहीं दी है।' पूज्यपाद वामन महाराजजी उस सभाके सभापति थे। वे बोले, "यदि इस जगतमें राधाजीका भजन करनेका कोई अधिकारी न होता, तो यह जगत रिक्त हो जाता। इस जगतमें सदासे राधाजीके भजनके अधिकारी थे, हैं और इस सृष्टिके अन्त तक रहेंगे। जो उत्तम अधिकारी है, वह अवश्य उनका भजन करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। *'राधा-पक्ष छाड़ि ये जन से जन, ये भावे से भावे थाके। आमि त' राधिका पक्षपाती सदा कभु न हेरि त'के।*"

वे जैसे लेखक हैं, वैसे वक्ता भी हैं। गुरु-महाराजके समयमें भी उनकी लेखनीमें कोई भूल नहीं होती थी। जिस प्रकार गुरु-महाराजजी कभी कोई पुस्तक देखकर लेख नहीं लिखते थे, उसी प्रकार उन्हें भी कभी पुस्तक नहीं देखनी पड़ती थी और न ही उनकी लेखनीमें सुधार-कार्यकी कोई आवश्यकता ही होती थी। गुरु-महाराज उसे सीधा चुँचुड़ा प्रेसमें प्रकाशनके लिये दे देते थे। श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमाके समय मायापुरमें श्रील प्रभुपादजीकी समाधि-स्थलमें गुरु-महाराज वक्तृता आरम्भ करनेके लिये श्रील प्रभुपादजीकी वन्दना हेतु जैसे ही 'प्र' उच्चारण करते, निरन्तर प्रवाहमान अश्रुओंसे सिसक-सिसककर क्रन्दन करने लगते। तब वे पूज्यपाद वामन महाराजकी ओर अथवा मैं, जो कलका आया बालक था, चूँकि कुछ स्वरसे श्लोकोंका उच्चारण और कुछ कीर्तन भी कर लेता था, अतः मेरी ओर इङ्गित कर देते थे।

पूज्यपाद वामन महाराजकी भाषा 'स्टैन्डर्ड'(उच्च स्तरीय) होनेपर भी 'coloquial' अर्थात् साधारण बोल-चालकी थी। ये सिलहेटी भाषा तो ऐसे बोलते थे, जैसे वहींके निवासी हों। उस समय तक कोई यह जान नहीं पाता था कि ये इतने होनहार हैं।

ये ऐसे श्रुतिधर थे कि यदि बड़े-बड़े श्लोक भी एक बार सुन लें, तो उन्हें पुनः सुननेकी आवश्यकता नहीं होती। यदि हम दिन-भर रटते-रटते, घिसते-पीटते, किसी प्रकार एक या आधा श्लोक याद करेंगे, तो उसमेंसे भी आधा श्लोक भूल जायेंगे। पूज्यपाद वामन महाराजने बाल्यावस्थामें, विद्यालयमें शिक्षा ग्रहण करते समय ही सम्पूर्ण गीता, गौड़ीय-कण्ठाहार, भागवतार्कमरीचिका-माला इत्यादि पुस्तकोंको कण्ठस्थ कर लिया था—एक वर्षमें ही इतना भगवत-ज्ञान प्राप्त कर लिया था! ये बचपनसे ही अतिशय विद्यानुरागी हैं। ये वास्तवमें वर्तमान कालमें हमारे गौड़ीय-सम्प्रदाय-सिद्धान्तके 'शब्दकोश' हैं। चूँकि मैं इनके अतिरिक्त अन्य वैष्णवोंके सम्पर्कमें अधिक नहीं रहा, इसलिये ऐसा समझता हूँ कि इन्हें प्रत्येक विषयपर जितने सन्दर्भ-स्त्रोत स्मरण हैं, उतने किसीको न होंगे। जब ये भगवद्गीता व श्रीमद्भागवतके श्लोक उच्चारण करते हैं, तो उन ग्रन्थोंके प्रारम्भके श्लोकोंसे सीधा अन्तपर ही रुकते हैं, मध्यमें कहीं भी ठहरनेकी इन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं होती। इन्हें वेदान्त-सूत्र तो बिल्कुल इसी प्रकार कण्ठस्थ है, '*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*', '*जन्मादस्य यतः*', '*शास्त्रयोनित्वात्*' (ब्रह्मसूत्र.१/१/१,२,३) इत्यादि श्लोकोंसे आरम्भकर एकदम अन्त तक पहुँच जाते हैं!

❖ अमानी-मानद

मैंने पूज्यपाद वामन महाराजमें एक बड़ा गुरुतर गुण लक्ष्य किया है। उनमें आत्म-प्रतिष्ठाकी तनिक भी स्पृहा नहीं है। मैं और पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी हरिकथा कहनेके बाद कभी यह पूछ भी लेते हैं, 'आज मैं कैसा बोला?', किन्तु उनके मुखसे मैंने कभी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूपमें, किसी भी दृष्टिकोणसे निज-प्रशंसा अथवा निज-प्रतिष्ठाकी कोई बात नहीं सुनी।

पूज्यपाद वामन महाराज गौड़ीय वेदान्त समीतिके आचार्य पदपर नियुक्त होनेके बाद भी, मेरे द्वारा कनिष्ठ गुरु-भ्राता होनेपर भी, मुझे इतना सम्मान देते कि जब वे दीक्षा प्रदान करनेके लिये जाते, तो मेरे पास आकर मुझे प्रणाम करके कहते 'महाराज, मैं जो पाप-कर्म करने जा रहा हूँ, आप उसके लिए मुझे क्षमा कर दें।' वे मुझपर इतना विश्वास करते कि कोई प्रश्न, विवाद या कार्य उपस्थित होनेपर कहते, 'मैं कुछ नहीं जानता, नारायण महाराजजीके पास जाओ।' यद्यपि मैं प्रारम्भसे ही इनके प्रति गुरु-बुद्धि रखता हूँ, तथापि वर्तमानमें भी, हरिकथाके समय मेरी उपस्थितिमें वे वक्तृता ही नहीं देंगे, अथवा ज़ोरसे कहेंगे कि, 'आप बोलिए' और मैं कहूँगा कि 'आप बोलिए'। हम दोनोंमें पाँच-दस मिनट यही होता रहेगा और सभी श्रोता प्रतीक्षा करते रहेंगे। अन्ततः देखा जाता कि मैं ही बोल रहा हूँ।

वे कभी प्रत्यक्ष प्रतिवाद नहीं करते। यदि भाषणमें मुझसे कोई भूल हो जाती है, तो वे उसी समय टोकते नहीं और, भाषणके बादमें भी मुझसे उसके विषयमें नहीं कहते। एकबार मैंने अपनी वक्तृतामें यह कह दिया था कि 'श्यामसुन्दर मन्दिर बलदेव विद्याभूषणजीने बनाया है।' वे बहुत दिनोंके बाद मुझे बोले, 'श्यामसुन्दर मन्दिर बलदेव विद्याभूषणजी द्वारा नहीं, श्यामानन्दजीने स्थापित किया था।'

❖ मौनी

पूज्यपाद वामन महाराजजी बहुत ही लज्जालु स्वभावके व्यक्ति थे, किसीसे अधिक बोलते नहीं थे। परन्तु अब तो वे वार्तालाप भी करते हैं, प्रचार भी करते

हैं। यदि गुरु-महाराजके समयमें उन्हें हरिकथा-पाठ करनेके लिये दिया जाता था, तो नहीं करते थे। अतः गुरु-महाराज जब प्रचार हेतु यात्रा करते, तो मुझे ही पाठ करनेके लिये आदेश देते थे। मुझे बङ्गला भाषा बोलनी नहीं आती थी, मैं बस पयारोंको कुछ सुरसे पढ़ देता और थोड़ा-बहुत कीर्तन कर देता था। भले ही मुझे किसी विषयमें प्रवचन करना आये अथवा नहीं, यदि गुरु-महाराजने एकबार आदेश दे दिया, तो बस मैं उठकर बोलने लगता था। मुझे संकोच नहीं होता था। मुझे स्मरण है कि एकबार, जब हम गुरु-महाराजके साथ प्रचारमें गये, तो गुरु-महाराजने वामन महाराजसे कहा, 'तुम उठकर पाठ करो'। ये बड़ी विपत्तिमें पड़ गये और सोचने लगे कि 'क्या करूँ?' फिर श्रीमद्भागवत खोलकर उसके श्लोक और उसमें लिखे उनके अनुवादोंका ही पाठ करने लगे!

प्रचारमें गुरु-महाराज भाषण देते थे, श्रील प्रभुपादके शिष्य दीनबन्धु बाबाजी, जिन्हें यद्यपि आकर्षक ढङ्गसे मृदङ्ग वादन करना नहीं आता था, तथापि वे ही मृदङ्ग बजाते थे, मैं गुरु-महाराजका कीर्तनीया था और वामन महाराजजी दोहार करते थे। यद्यपि वामन महाराजजीको सभी कीर्तन मुखस्त थे, तथापि न वे कीर्तन करते थे और न ही किसीसे अपनी योग्यताके विषयमें कुछ कहते थे। जिस प्रकार हनुमानजीके चरित्रमें दृष्टिगोचर होता है, यदि कोई कहकर इन्हें इनकी योग्यता स्मरण करवा दे, तब तो इन्हें कुछ स्मरण होगा, अन्यथा एकदम चुपचाप रहेंगे, कुछ बोलेंगे नहीं, मानो कुछ जानते ही न हों।

तब गुरु-महाराजने सोचा कि, 'मैं इसका क्या उपाय करूँ?' फिर उन्होंने इनसे गौड़ीय पत्रिकाकी सेवाएँ लेकर वृन्दावन दासको प्रदान कर दीं और इन्हें आदेश दिया कि 'तुम प्रचारमें जाओ।' इनको बहुत दुःख हुआ कि 'मेरा चुँचुड़ाका मठ छुड़वा दिया, प्रेस छुड़वा दी।' किन्तु जब प्रचारसे लौटकर आये तो एकदम बदल गये। वे पुनः चुँचुड़ा प्रेसमें नियुक्त नहीं हुए, अपितु आसाम इत्यादि सुदूरस्थ स्थानोंमें भी प्रचार करने लगे। अब तो वे तीन-चार घण्टोंकी वक्तृताएँ देते हैं। यदि चार बजे कहने बैठते, तो कब ग्यारह बज गये, इन्हें पता ही नहीं चलता! यह अतिशयोक्ति नहीं है। मैं आधा घण्टा, पौना घण्टा या अधिक-से-अधिक एक घण्टा हरिकथा कह सकता हूँ और उतनेमें ही हार जाऊँगा, किन्तु ये तत्त्वके बाद तत्त्व, युक्तियाँ और प्रमाण बोलते ही चले जायेंगे और वह भी सहज-सरल तथा स्वाभाविक भाषामें। बङ्गला-भाषापर तो इनका इतना अधिकार है कि बड़े-बड़े सिद्धान्तोंको सहज भाषामें व्यक्त कर देते हैं।

❖ गम्भीर

पूज्यपाद वामन महाराजजी गोपानीयताके विषयमें बहुत निपुण हैं। कोई सहज ही इनके मनका भेद नहीं ले सकता है। यह गुण आचार्य-पदके लिए अत्यावश्यक है। गुरु महाराजके अप्राकट्यके उपरान्त, एक समय मैं मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें कुछ अदल-बदल (वस्तुएँ विक्रय) कर रहा था, क्योंकि उस समय मेरे पास लेशमात्र भी धन न था और न ही मेरा किसीसे परिचय था, मथुरावालोंसे भी परिचय नहीं था। मैंने मठके निर्माणकार्यमें कर्मचारियोंको तो नियुक्त कर दिया था, किन्तु कहाँसे उनके मेहनतानाकी व्यवस्था करूँ—यह समझ नहीं पा रहा था। जब पूज्यपाद वामन महाराजजीको इस विषयमें ज्ञात हुआ, तो उन्होंने नितान्त गुप्त रूपसे सर्वप्रथम मुझे पाँच हज़ार रुपये दिये, जिससे आरम्भकर क्रमशः यह सब निर्माण हुआ। इनके द्वारा परोपकारवश किसीको कोई द्रव्य या धन इत्यादि देनेपर अन्य किसीको उसके बारेमें कदापि भान ना होगा; ये गुप्त रूपसे देंगे और कभी उसका उल्लेख भी नहीं करेंगे—यह इनका विशेष गुण है। यदि हम कुछ सेवा अथवा पुण्य-कार्य

करते हैं, तो उसे भी बड़ा-चढ़ाकर अन्योंसे कहते हैं। हम किसी-न-किसी रूपमें अपनी प्रशंसा अवश्य कर लेंगे, किन्तु ये कभी नहीं करेंगे।

❖ मृदु

पूज्यपाद वामन महाराजजीका खण्डन करनेका एक अपना तरीका है। यदि उन्हें किसीके विचारका प्रतिवाद करना होता है, तो मधुर रूपसे ही करते हैं, जिससे कि उस व्यक्तिके हृदयमें आघात न लगे। मैं तो 'डायरेक्ट ऑपरेशन' ('प्रत्यक्ष चिकित्सा') कर देता हूँ, किन्तु वे ऐसा कभी नहीं करते, बहुत मधुर-मधुर रूपसे बोलते हैं। वे अत्यन्त नम्र-भाषामें लक्षित व्यक्तिके विचारका अंश-प्रत्यांश इस रूपसे खण्डन कर देंगे कि लक्षित व्यक्ति ही उसे समझे, अन्य नहीं।

इनके शिष्य-वात्सल्यकी तो कोई सीमा ही नहीं है। ये अपने प्रत्येक शिष्यसे ऐसे स्निग्ध रूपमें वार्तालाप करते हैं जिससे वह समझता है कि गुरुजी सबसे अधिक मुझसे ही स्नेह करते हैं। मुझे तो वैसा स्नेह आदि करना नहीं आता, किन्तु ये उसमें सुनिपुण हैं।

❖ करुण और सर्वोपकारक

पूज्यपाद वामन महाराजके पास जो प्रणामी आती है, उससे ये कितने ही लोगोंकी सहायता करते हैं, परन्तु उसके विषयमें किसीको नहीं बताते, मुझे भी नहीं। दान ऐसा ही होना चाहिए कि यदि एक हाथसे दान हो तो दूसरे हाथको पता न चल

❖ विजित षड्गुण

पूज्यपाद वामन महाराजमें प्रचुर वैराग्य है। इनकी माताजीके चार पुत्र थे, जिनमें ये सबसे ज्येष्ठ थे। वे सभी मठमें इनसे भेंट करनेके लिए आते थे, किन्तु मैंने देखा कि इन्हें तनिक भी उनसे मोह-ममता न थी। ये साधारण लोगोंके साथ जैसा व्यवहार करते, उनके साथ भी इनका वैसा ही व्यवहार होता था। बहुत-से मठवासी अपने पूर्वाश्रमके सदस्योंके प्रति झुक जाते हैं, किन्तु इनकी प्रवृत्ति ऐसी न थी। 'पूर्व इतिहास भूलिनु सकल सेवा-सुख पेये मने।'

❖ मितभुक्

पूज्यपाद वामन महाराज ठाकुरजीके लिए पुष्प-चयन हेतु खड़ाऊँ पहनकर ही पेड़पर चढ़ जाते थे। मैं भी बहुत दिनों तक, मथुरामें आने तक और उसके बाद भी खड़ाऊँ पहनता था। किन्तु वामन महाराज तो मुझसे भी अधिक अभ्यासी थे। एकबार जब ये चुँचुड़ा प्रेसकी सेवाके लिये ट्राममें खड़ाऊँ पहनकर जा रहे थे, इनका पैर फिसल गया। तब गुरु-महाराजने, मैंने और अन्य सब भक्तोंने इन्हें खड़ाऊँ पहननेसे बहुत निषेध किया। तब इन्होंने पादुका पहनना आरम्भ किया।

हम लोग पूर्वाश्रम-कालमें उच्च-पदस्थ अधिकारी होनेपर भी मठमें आकर मारकिनकी मात्र एक धोती, वह भी केवल यहाँ (घुटनों) तक पहनते थे और दिन-रात सेवामें लगे रहते थे। हमने कठोर शीतकालमें भी केवल धोती और खड़ाऊँके अतिरिक्त अन्य कोई आच्छादन इत्यादिकी वस्तु कभी नहीं देखी थी। वर्तमान कालके लोग वैसे वैराग्यकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌के नामके प्रति निष्ठा

मैंने पूज्यपाद वामन महाराजजीके मुखसे यह वृतान्त सुना है—

एकबार मायापुरमें बाढ़ आयी, जिसमें वे मोटी धोती और खड़ाऊँ पहने हुए अकेले घिर गये। जब वे नौका लेकर चले, एक प्रबल प्रवाह आया और उनकी नावको ले गया। कुछ समयके संघर्षके बाद इन्हें एक वृक्ष मिल गया, जिसको इन्होंने पकड़

लिया और अपनी नौका उसके सहारे लगायी। किन्तु तभी देखा कि उस वृक्षमें सर्वत्र सर्प लिपटे हुए हैं, बाढ़में सर्प भी उस वृक्षका आश्रय लिये हुए थे। महाराज बड़ी विपत्तिमें फंस गये। उन्होंने मुझे बताया था कि 'मैंने भगवान्‌का नाम लेते हुए उस वृक्षको पकड़कर रखा। कुछ समय बाद, लोगोंको मेरी अवस्थिति का पता लगनेपर, वे मल्लाह लेकर आये और मुझे वहाँसे निकालकर ले गये।'

गौड़ीय-सिद्धान्तों एवं दार्शनिक-विचारोंमें दक्षता

एकबार आसाममें—'महाप्रभु भगवान् हैं या नहीं'—इस विषयपर तर्क-वितर्क उठ गया और प्रमाणोंकी आवश्यकता उपस्थित हुई। पूज्यपाद वामन महाराज इस विषयपर ३९ प्रकारके प्रमाण संग्रहकर सदैव अपने पास रखते थे। किन्तु इन्हें उन प्रमाणोंको देखनेकी आवश्यकता ही नहीं हुई और इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुकी भगवत्ताके प्रतिपादक प्रमाणोंकी एकके बाद एक झड़ी लगा दी।

पूज्यपाद वामन महाराजकी लेखनी इतनी गतिशील थी कि गुरु-महाराज जहाँ जो कहते, ये सब लिपिबद्ध कर लेते थे और तत्पश्चात् वही गौड़ीय पत्रिकामें छपता था। किसी समय गुरु-महाराजने एक मासके तीस दिनोंमें चालीस विराट धर्मसभाओंमें वक्तृताएँ दीं, जिनमें हम दोनों भी उनके साथ गये थे। उन वक्तृताओंके क्रममें एकबार पूज्यपाद भक्तिभूदेव श्रौती महाराजजी गुरु-महाराजके साथ हम दोनोंको हल्दियाके पास गेहूँखाली नामक स्थानपर ले गये। वहाँपर एक सुविशाल धर्मसभा हो रही थी, जिसमें बड़े-बड़े शिक्षक, हेड्‌मास्टर इत्यादि 'दार्शनिक' व्यक्ति उपस्थित थे। गुरु-महाराजने अपने भाषणमें रामकृष्ण मिशनके—यत मत तत पथ (अर्थात भिन्न-भिन्न पथोंका अवलम्बन करनेपर भी सभी एक ही गन्तव्य-स्थानपर पहुँचेंगे), साम्य-दर्शन ही यथार्थ दर्शन है—इत्यादि वादोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। उससे वहाँ उपस्थित मेदिनीपुरके सभी शिक्षक, हेड्‌ममास्टर इत्यादि उनका प्रतिवाद करने लगे। उन्होंने कहा कि 'हम बेलूरके स्वामीजीको बुला रहे हैं, कल सभा हो।' गुरु-महाराजने कहा, 'कलकी प्रतीक्षाकी आवश्यकता नहीं, मैं अभी यह लिखकर देता हूँ कि आपके बेलूरके स्वामीजी नहीं आयेंगे।' उन्होंने गुरु-महाराजसे अपने स्वामीजीको बुलानेके लिये पाँच दिनका समय माँगा। गुरु-महाराज बोले, 'मैं उनके आने और लौटनेका खर्चा देता हूँ, आप उन्हें बुलाएँ। मैं चुँचुड़ा जा रहा हूँ और अपने इस सबसे छोटे बच्चे (पूज्यपाद वामन महाराजजी) को यहाँ छोड़कर जा रहा हूँ। मेरे लौटकर आनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यही आपके लिये पर्याप्त होगा। क्योंकि यदि आपके स्वामीजी यह सुन लेंगे कि यहाँ केशव महाराज आये हुए हैं, तो वे क्या, उनके पिता भी यहाँ नहीं झाँकेंगे!' सचमें वैसा हुआ। उन लोगोंने अपने स्वामीजीको बुलानेकी बहुत चेष्टाएँ की, किन्तु गुरु-महाराजजीका नाम सुनने मात्रसे ही वे नहीं आये।

बच्चोंके साथ हिल-मिलकर कहानियाँ सुनाना

जब पूज्यपाद वामन महाराज चुँचुड़ा प्रेसमें सेवारत थे, तो कभी-कभी किसीको बिना बताये, एक-दो दिनके लिए न जाने कहाँ चले जाते थे! उनकी एक विशेषता यह भी है कि वे क्या करनेवाले हैं, किसीसे नहीं कहेंगे, कहाँ जानेवाले हैं, किसीको नहीं बतायेंगे। वे किसीसे इतना वार्तालाप ही नहीं करते थे कि कोई उनसे कुछ पूछे। रातमें नौ बजे निकलते थे। कृष्णचन्द्रपुरमें हमारी एक पिशि माँ (श्रील प्रभुपादजी की शिष्या) थीं, जो इन्हें अपने पुत्रवत मानती थीं। ये कभी-कभी ग्रन्थ-प्रकाशन की सेवासे क्लान्त होकर किसीको बिना बताये उनके घर चले

जाते थे। जब ये एकदम दुबले-पतले ब्रह्मचारी थे, तब एक बार मैंने देखा कि ये चुँचुड़ा-निवासी, ज्ञान बाबूके और पड़ोसके छोटे-छोटे बच्चोंसे ऐसे बातें कर रहे हैं कि मानो उनसे एकदम हिल-मिल गये हों। बच्चोंने इनसे पूछा, 'प्रभु, एक भूतकी गल्प सुना सकते हैं?' ये बच्चोंको वैसी सब कथाएँ सुनानेमें बड़े पटु थे। ये बोले-

"एक बार मैं चुँचुड़ासे सात बजेकी गाड़ी (ट्रेन) पकड़कर निकला। मुझे कलकत्ता पहुँचनेमें नौ बज गये और वहाँसे लगभग दस बजे सियालदह जानेकी अन्तिम गाड़ी मिली। वहाँसे दस-बारह स्टेशनके बाद मज़ीलपुर जयनगर पड़ता है। वहाँसे, गहन जङ्गल तथा बिना किसी साधनवाले, चार-पाँच मील लम्बे और भयावह मार्गको तय करनेपर पिशि माँका गाँव था। गाड़ीको विलम्ब होनेके कारण मज़ीलपुर जयनगर स्टेशन पहुँचनेमें ग्यारह बज गये। मैंने स्टेशनसे चलकर बीच रास्तेमें एक जगह देखा कि बहुत चका-चौंध है। वहाँ नदीके किनारे रातके बारह बजे भी विवाह हो रहा था और उत्सवमें पूड़ी आदि बहुत-से पकवान बन रहे थे। इतनेमें कन्याका पिता मेरे पास आकर, प्रणाम करके बोला, 'महाराजजी, आप मेरी पुत्रीको आकर आशीर्वाद दें और फिर चले जायें।' उसके अन्य सम्बन्धी भी मेरा मार्ग घेरकर खड़े हो गये। मैं ठीक समझ भी नहीं पा रहा था कि वह कोई विवाहोत्सव है अथवा क्या है? वे मुझे टालीके कारखानेके पासवाले श्मशानमें ले गये और मुझे घेरकर बैठ गये और फिर कुछ अटपटी भङ्गीसे बोले, 'आप तो पुरोहित हैं, विवाह करवायेंगे? भोजन करके जाना।' मुझे डर लगने लगा। मैंने देखा कि वे मेरे निकट नहीं आ रहे थे। मेरे कण्ठमें तुलसी-माला तो थी, मैंने अपनी तुलसीकी हरिनाम माला भी निकाल ली और उसपर 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका जप करने लगा। तब मैंने सुना कि वे परस्पर यह कानाफूसी करने लगे कि 'यदि ये माला न होती और यह ऐसा (महामन्त्र) नहीं बोलता तो हम इसे छोड़ते नहीं।'

यही नहीं, उन्होंने मुझे टोकरी-भर फलोंके साथ टाँगेपर बैठाकर पिशि माँके घर तक भी पहुँचा दिया। ज्योंही मैं टाँगेसे उतरा, मैंने देखा कि वहाँ न टाँगा और न टाँगेवाला! सब गायब! यदि मैंने हरिनाम न किया होता तो मेरे प्राणोंकी रक्षा होना दुष्कर था। जब मैं पिशि माँके पास पहुँचा, वे आश्चर्यचकित होकर बोलीं, 'तुम इस समय उस स्थानसे कैसे आ गये? वहाँ तो सर्वत्र भूत रहते हैं!' मैंने कहा, 'वहाँ तो मुझे एक बारात मिली थी।' पिशि माँ बोलीं, 'अरे, वह कोई बारात नहीं थी, वे सब भूत थे! इसी प्रकार उन्होंने उस स्थानसे जानेवाले न जाने कितने ही लोगोंके प्राण हर लिये हैं! तुम हरिनाम कर रहे थे, इसलिये उन्होंने तुम्हें छोड़ दिया।" उस वृतान्तको सुनकर भयसे उन बच्चोंके रोंगटे खड़े हो गये। वामन महाराजसे ऐसी बातें सुननेके लिये ही वे बच्चे प्रतिदिन आते थे।

संन्यास ग्रहण

सन् १९५२में गुरु-महाराजने पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मुझे हम तीनोंको एकसाथ संन्यास प्रदान किया। जब उसके लिए आयुमें हम तीनोंमें सबसे ज्येष्ठ, श्रीराधानाथ प्रभुसे कहा गया, तो वे बोले, 'गुरु महाराज, पूज्यपाद श्रौती महाराज, पूज्यपाद नैमी महाराज इत्यादि श्रील प्रभुपादजीके जितने भी शिष्योंने संन्यास ग्रहण किया, सभी प्रकाण्ड विद्वान थे। मैं वैसा नहीं हूँ, अतः मैं संन्यास नहीं लूँगा।' जब श्रीसज्जन सेवक प्रभुसे संन्यास ग्रहण करनेके लिए कहा गया, तो उन्होंने कहा कि 'यदि राधानाथ प्रभु संन्यास नहीं लेंगे तो

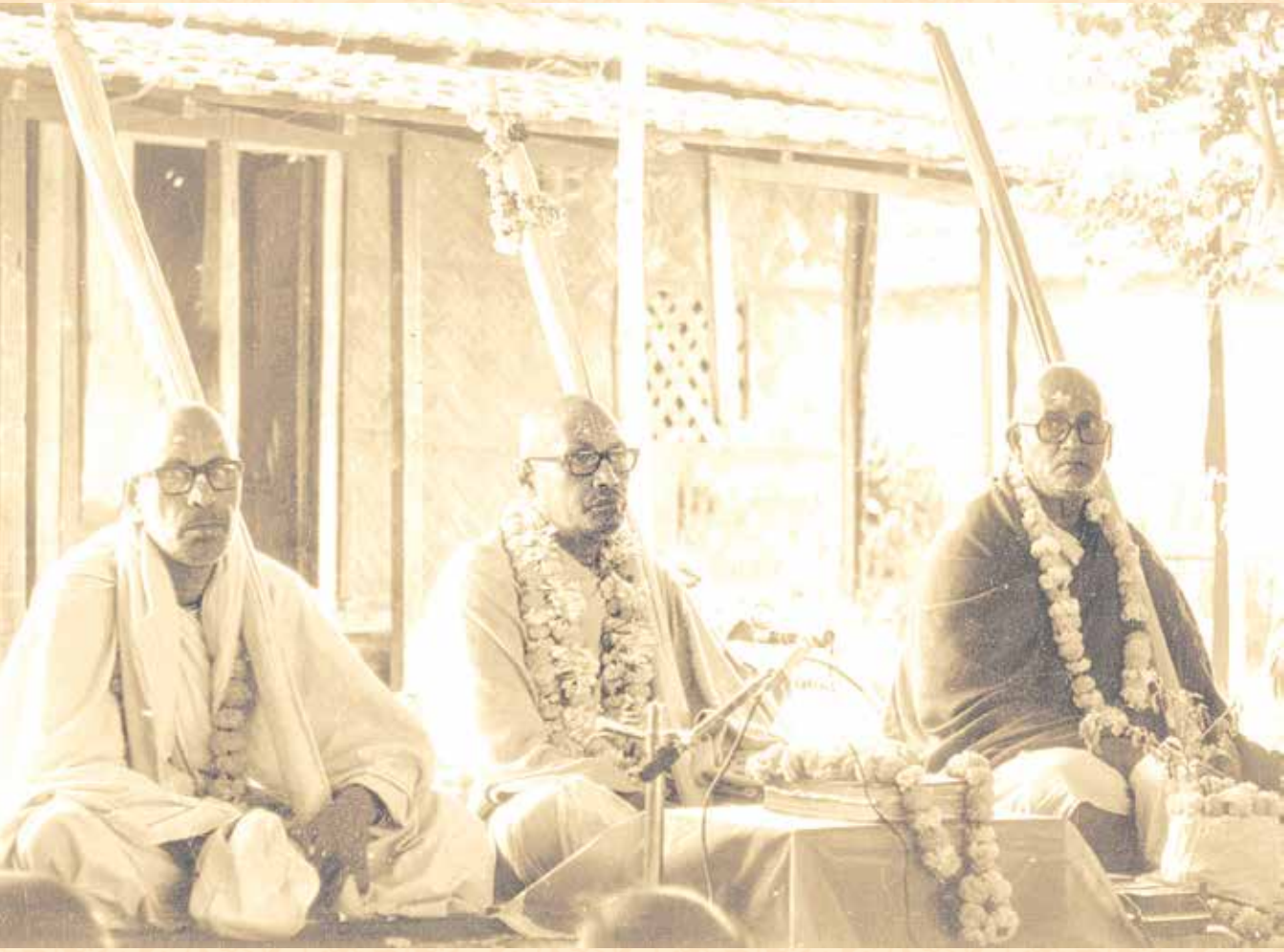

मैं भी नहीं लूँगा।' जब मुझसे कहा गया, तो मैंने भी अस्वीकृत कर दिया।

तब पूज्यपाद नारसिंह महाराज, जो बड़े युक्तिवादी थे, उन्होंने आकर मुझसे संन्यास न लेनेका कारण पूछा और मैंने उत्तर दिया कि 'मैं योग्य नहीं हूँ'। वे बोले, 'तुम्हारी योग्यता है अथवा नहीं यह तुम्हारे गुरुदेव देखेंगे अथवा तुम? तुम अपने लाभके लिए संन्यास नहीं लोगे अथवा गुरुदेवकी सेवाके लिये लोगे? तुम्हारे गुरुदेव जो चाहते हैं वैसा होना चाहिए अथवा जो तुम चाहते हो वह? यदि तुम जो चाहते हो वही करना था, तो अपने घरमें क्यों नहीं रहे?'

तब मेरी समझमें आ गया और मैंने कहा, 'ठीक है, भले ही बादमें मुझे जो कुछ हो, मैं संन्यास लूँगा। यदि गुरु-महाराज मुझे नग्नावस्थामें रखेंगे, तो मैं नग्नावस्थामें रहूँगा, संन्यास देंगे, तो

संन्यास लूँगा, लाल कपड़ा (नैष्ठिक ब्रह्मचारीका गैरिक वेश) देंगे, तो लाल कपड़ा ले लूँगा। वे जो कहेंगे, मैं वही करूँगा। मैं अपने विचारसे अब और कुछ भी नहीं करूँगा।' किन्तु श्रीसज्जन सेवक प्रभु तथा श्रीराधानाथ प्रभु नहीं माने। तब गुरु-महाराजने कहा कि, 'गौर नारायणका अकेले ही संन्यास होगा।' जब मेरे संन्यासकी तैयारी सम्पन्न हो गयी, तब इन दोनोंने कहा, 'गौर नारायण जिस विचारसे, गुरु-महाराजकी इच्छा-पूर्तिके लिए, संन्यास ले रहे हैं, उस विचारसे हम भी संन्यास लेंगे।' इस प्रकारसे गुरु-महाराजके द्वारा प्रथमतः हम तीनों व्यक्तियोंका एकसाथ संन्यास हुआ।

मैं देखता हूँ कि वास्तवमें पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज—ये दोनों संन्यासके सर्वोपयुक्त पात्र थे। किन्तु वर्तमान समयमें संन्यास-ग्रहणका स्तर गिर गया है। जिन्हें कुछ सिद्धान्त-ज्ञान नहीं, कुछ विचार नहीं, श्रीमद्भागवतमें प्रवेश नहीं—वे लोग भी संन्यास ले रहे हैं। संन्यास लेनेकी वास्तविक योग्यता यह आन्तरिक भाव है कि संन्यासके द्वारा मुझे अपने गुरुदेवकी सेवा करनी है। पूज्यपाद वामन महाराजकी गुरु-सेवा अकल्पनीय है। अतः वे यथार्थ संन्यासी हैं।

हम तीनोंमें स्नेह-प्रीतियुक्त सम्बन्ध

गुरु-महाराजके समयमें, प्रारम्भसे ही पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मैं—हम तीनों मिलकर गुरु-महाराजकी सेवा करते थे और गुरु-महाराजजीके अप्रकट होनेके बाद भी हम तीनोंने मिलकर गौड़ीय वेदान्त समीतिकी सेवा की और प्रचार किया। हमारा परस्पर जैसा स्नेह-प्रीतियुक्त सम्बन्ध है, वैसा इस जगतमें प्राप्त होना दुर्लभ है। इसलिये लगभग साठ-पैंसठ वर्ष तक, जब तक हम तीनों प्रस्तुत रहे, गौड़ीय वेदान्त समीति अच्छी प्रकारसे चलती रही।

यथार्थ पुष्पाञ्जली

आजकी परम पावन तिथिपर मैं पूज्यपाद वामन महाराजजीके चरणकमलोंमें कोटि-कोटि दण्डवत प्रणाम करते हुए पुष्पाञ्जली अर्पण करता हूँ। आज वे यहाँ प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित नहीं होनेपर भी अप्रत्यक्ष रूपसे उपस्थित हैं। कैसे? जैसे भगवान् वहाँ निवास करते हैं जहाँ—'*तत्र तिष्ठामि नारद यत्र गायन्ति मद्भक्ताः।*' (पद्म-पुराण) अर्थात् 'नारद, जहाँ मेरे भक्त मेरा गायन करते हैं, मैं वहीं निवास करता हूँ।' अतः भगवान्‌के भक्त होनेके कारण पूज्यपाद वामन महाराज किसी-न-किसी रूपमें यहाँ उपस्थित हैं।

वे आप लोगोंपर भी यह कृपा करें कि आप उनका आदर्श ग्रहण कर सकें। यदि आपलोग यथार्थमें उनके जैसे बन सकें, वैसा भजन, वैसी गुरु-सेवा और वैष्णव-सेवा कर सकें, तब तो उनके चरणोंमें आपकी पुष्पाञ्जली निवेदन करना हुआ। परन्तु यदि आपने उनका आचार और विचार ग्रहण नहीं किया, तो आप चाहे जितना भी उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जली देनेका प्रयास करें, वस्तुतः आपकी पुष्पाञ्जली नहीं हुई। इसलिये आप लोग यत्नपूर्वक वैसा साधन-भजन, हरिनाम करेंगे, उनके विचारोंको ग्रहण करेंगे, वैसे सहिष्णु होंगे और उनके गुणोंको अपने जीवनमें ग्रहण करनेकी चेष्टा करेंगे। तब उनके चरणोंमें आपकी पुष्पाञ्जली होगी। हम प्रार्थना करते हैं कि हमें उनके जैसी गुरु-निष्ठा, गुरु-भक्ति, भगवद्भक्ति प्राप्त हो और उनके समान हम भी गुरुदेवकी सेवा कर सकें।

दैन्यमय जीवनम्

आचार्य पदपर अभिषिक्त होनेपर

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

(श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और नियामकाचार्य जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेके बाद परवर्ती सभापति और आचार्य-पद पर अभिषिक्त होनेके समय ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त अभिभाषण, दिनांक १९-१०-१९६८, स्थान—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, नदीया)

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे श्रीगुरुं दीनतारणम्॥
नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य-नाम्ने गौरत्विषे नमः॥
हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त! नमोऽस्तु ते॥
तप्तकाञ्चन-गौराङ्गि राधे वृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुते देवि प्रणमामि हरिप्रिये॥
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

परमपूजनीय सभापति महोदय श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज, परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज, श्रीमद्भक्तिप्रापण दामोदर महाराज, अन्यान्य त्रिदण्डिपादवृन्द, समवेत वैष्णववृन्द, एवं मेरे पूजनीय सतीर्थ भ्रातृवृन्दके चरणोंमें यथायोग्य प्रणाम निवेदन कर रहा हूँ।

आज श्रीश्रील गुरुदेवकी विरह-तिथि है। मेरे पूर्ववर्ती गुरुवर्ग सभीने श्रील गुरुदेवकी महिमाका कीर्तन किया है। उन लोगोंके श्रीमुखसे आपलोगोंने श्रील गुरुदेवकी महिमा प्रचुर परिमाणमें श्रवण की है। इस अवस्थामें कुछ नयी बात बोलनेके लिए विषयवस्तु ढूँढने पर भी नहीं पा रहा हूँ। फिर भी

उनके उच्छिष्टभोजी सेवकरूपमें उनका चर्बित चर्बण करना ही मेरा एकमात्र कर्तव्य है। किन्तु गुरुदेवकी महिमा प्रकाश करने योग्य भाषा या क्षमता, कुछ भी मुझमें नहीं है। तथापि वैष्णवोंका आदेश पालन करते हुए गुरुदेवकी महिमा की दो-एक बातें प्रकाशित करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। अभी तक हमने वैष्णवोंके श्रीमुखसे गुरुदेवकी महिमा जो श्रवण की है, उनमेंसे दो-एक विषय हम विशेषरूपसे लक्ष्य कर सकते हैं। हम लक्ष्य करते हैं कि उन्होंने अपने परमोपास्यदेवके मनोऽभीष्टका प्रचार किया है। इस कार्यको करते समय उनके जीवनमें जो विशेषरूपसे प्रतिफलित हुआ है, वह दो भागोंमें विभक्त है। हम साधारण रूपसे महाजनोंके चरित्रमें दो पहलुओंको देखते हैं—

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमीश्वरः॥

"*वज्रादपि कठोराणि*"—यही धर्म उनके चरित्रमें विशेषरूपसे प्रस्फुटित हुआ है। "*मृदुनि कुसुमादपि*"—यह भी उनमें समानरूपसे देखा गया है। वे आदर्श और सत्यके निर्भीक प्रचारक थे, उसका दीप्तिमान् दृष्टान्त हमने गुरुवर्गके मुखसे श्रवण किया है। वे कितने दयालु थे, कितने मृदु थे, उसका प्रमाण भी आपलोगोंको बहुत मिला है। यहाँ मेरे कहनेका विषय यह है कि गुरुदेव हमारे नित्यकालके बान्धव हैं। जिन्होंने समस्त प्रकारके सांसारिक विषयसुखोंका परित्यागकर, सांसारिक माया-ममता सब कुछ परित्यागकर गुरुदेवके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किया है, पारमार्थिक शिक्षा-दीक्षा ग्रहणकर इस भजनपथपर आगे बढ़नेकी चेष्टा कर रहे हैं—गुरुदेवके चरणकमल ही उनकी एकमात्र गति हैं। इसलिए उन गुरुदेवका आदर्श, उनका उपदेश-निर्देश हमारा एकमात्र जीवातु (जीवनका आश्रय) हो। आज गुरुदेवके विरहवासरमें उनके श्रीचरणकमलोंमें हमारी एकान्त प्रार्थना है कि वे अलक्षित रूपमें रहकर भी असीम आशीर्वाद करें, जिससे उनकी कथा (विचार-धारा), उनके आदेश-निर्देशोंको हम सब प्रकारसे पालनकर इस जगतमें उनकी महिमा उत्तमरूपसे प्रतिस्थापित कर सकें एवं उनके उपास्य देवता श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीकी महिमाको भी जगतमें विस्तारित कर सकें। मेरे बाद और भी वक्ता हैं, इसलिए मेरा समय कम है। इसके अतिरिक्त मुझमें बोलनेका सामर्थ्य नहीं है।

अन्तमें मैं यह निवेदन कर रहा हूँ—यहाँ मेरे पूजनीय वैष्णववृन्द और स्नेहमय गुरुवर्ग सभी उपस्थित हैं। अभी मेरे ऊपर जो गुरुदायित्व अर्पित हुआ है, इस सम्बन्धमें मैं सम्पूर्ण रूपसे अयोग्य हूँ। मेरे ऊपर जो गुरुभार अर्पित हुआ है, मैं उसे समझनेके लिए असमर्थ हूँ। फिर भी श्रीगुरुदेवके आदेशके अनुसार यह दायित्व मुझे सिरपर धारण करना पड़ रहा है। अभी मैं योग्य हूँ या अयोग्य हूँ, श्रीगुरुदेव इसका विचार करें एवं अन्य पूजनीय वैष्णववृन्द इसपर विचार करें।

फिर भी उनके [पूजनीय वैष्णववृन्द] निकट मैं यह आश्वासन दे सकता हूँ, यह प्रतिज्ञा कर सकता हूँ कि मैं गुरुदेवका आदेश अच्छी तरह पालन करूँगा। इसलिए इस विषयमें उनकी सहायता, सहानुभूति, आशीर्वाद सब कुछ प्रार्थना करता हूँ। उनके कृपाशीर्वादसे हो सकता है, मैं उन सभी कार्योंको अच्छी तरह परिचालित करनेमें शक्ति-सामर्थ्य प्राप्त करूँगा। अन्तमें मैं मेरे सतीर्थ गुरुभ्राताओंके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहा हूँ कि वे भी मुझे निष्कपट सहायता करें; उनकी सहायता, सहानुभूति, सहयोगके बिना मैं एक पग भी चल नहीं सकता।

अन्तमें श्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंमें एकान्त प्रार्थना है कि वे अदृश्य रहकर भी हमारे ऊपर प्रचुर आशीर्वाद वर्षण करें, जिससे उनकी अन्तिम वाणीकी सार्थकता सम्पादन कर सकूँ और उनका आदेश पालनकर अपने जीवनको धन्य कर सकूँ। वैष्णवोंके निकट आशीर्वादके लिए मेरी प्रार्थना है कि वे मेरे ऊपर प्रचुर आशीर्वाद वर्षण करें जिससे गुरुदायित्वका पालन करना मेरे लिए सम्भव हो सके। आज यहीं पर अपने वक्तव्यको समाप्त कर रहा हूँ।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

C/o श्रीशिवानन्द दासाधिकारी
(श्रीशिवनाथ साहा मण्डल)
पोः—टङ्गला (दरङ्ग) आसाम
६/९/८२

श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति पूर्विकेयम्—

पूज्यपाद महाराज! आशा करता हूँ कि परमाराध्य श्रील गुरुपादपद्मकी अशेष कृपासे आप शारीरिक रूपसे तथा भजन-कुशल हैं। हम लोग मेघालय गौड़ीय मठमें वार्षिक उत्सव सम्पन्नकर सुखचर, धुबड़ी, विलासीपाड़ा, वासुगाँव आदि स्थानोंमें प्रचार समाप्तकर उपरोक्त पतेपर २/९/८२ तारिखको Arunachal Express से पहुँचे हैं। पिछले तीन दिनोंसे यहाँपर पाठ-कीर्तन आदि चल रहा था।

गतकल ५/९/८२ को संध्यामें ६ बजे कीर्तन आरम्भ हुआ। [तत्पश्चात् मैंने पाठ किया।] मेरे द्वारा भागवत पाठ करके चले आनेके बाद श्रीरामलीलाका कीर्तन आरम्भ हुआ। यहाँपर बिजली बहुत कम जाती है, तथापि आज कीर्तनके समय लगातार ३/४ बार बिजली चली गयी। Mike लगाया गया था, परन्तु वह अच्छी प्रकारसे काम नहीं कर रहा था। इसलिए श्रीमान् सुन्दरानन्द उसे switch board में plug top लगाकर काम कर रहा था। हठात् उसमें current आ गया और उसको झटका लगा। उसकी छातीमें current का धक्का लगनेके साथ-ही-साथ दस मिनटमें वह मूर्च्छित हो गया। कुछ क्षणोंमें ही डाक्टरको लाया गया, किन्तु सब चेष्टाएँ विफल हो गयीं। सरकारी अस्पतालके डाक्टरने अच्छी प्रकारसे बहुत बार परीक्षा करनेके बाद Death Certificate (मृत्यु-प्रमाणपत्र) लिख दिया। थानेसे o/c आया तथा रिपोर्ट लिखकर एक कापी देकर चला गया।

ऐसी अवस्थामें हमलोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। श्रीगुरु-वैष्णवोंकी इच्छासे परवर्ती कर्तव्य आरम्भ हुए। रातमें ८-३० बजे यह दुर्घटना घटी। तथा रातमें २ बजे मठवासी संन्यासी-ब्रह्मचारी तथा गृहस्थभक्त सुन्दरानन्दको कन्धेपर लेकर निकटके श्मशानघाट पहुँचे तथा प्रातः छः बजे दाहकार्य पूर्णकर सभी लोग अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वासस्थानपर लौट आये। मैंने आपको आज ही ६/९/८२ को Telegram दिया है। वह आपको प्राप्त हुआ

वामन गोस्वामी महाराज द्वारा श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त महाराजको लिखित दो पूर्व-अप्रकाशित पत्र

कि नहीं यह सन्देहकर मैं आपको यह पत्र दे रहा हूँ। मेरे और हम सबके लिए यह अभी भी स्वप्नके समान ही चल रहा है। सामान्य ५-१० मिनिटमें ही अघटन घट गया। ब्रह्मचारी-संन्यासी सभी सेवकवृन्द विषादग्रस्त तथा दुःखके भारसे आक्रान्त हैं। मैं रोऊँ या Heart Fail करूँ, कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरे साथ विष्णु महाराज, यति महाराज, गोवर्धन, श्रीदाम, स्वरूपानन्द, श्यामलकृष्ण, रामगोविन्द आदि ११ वैष्णव मूर्ति हैं। एक सेवक कुछ ही देरमें चिरकालके लिए हमारा सङ्ग परित्यागकर कैसे चला गया?—मैं यह समझ नहीं पा रहा हूँ। श्रीमान् सुन्दरानन्दकी विगत आत्माके कल्याणके लिए आशीर्वाद माँगनेके लिए मैंने आपको Telegram दिया है। श्रेष्ठ-ज्येष्ठ वैष्णवोंकी शुभेच्छा तथा शुभाशीर्वादसे जीवात्मा उद्धर्वगति प्राप्त करती है—यही मेरा दृढ़ विश्वास है। उसने यदि आपके श्रीचरणोंमें जान अथवा अनजान अवस्थामें कोई भी अपराध किया है, तो आप उसे अवश्य ही क्षमा करेंगे तथा अन्यान्य वैष्णवोंको भी उसके दोष-त्रुटियोंको क्षमा करनेके लिए कहेंगे—यही प्रार्थना है।

सेवकगण गुरुगृह या श्रीमठसे क्यों चले जाते हैं, इसका सहज-सरल उत्तर है—स्वतन्त्रताका अपव्यवहार। इसके लिए यदि मठके कर्तृपक्षके ऊपर दोषारोप किया जाय, तो यह रीतिविरुद्ध मर्यादालङ्घन है। मेरा मानना है कि सेव्य तथा सेवकोंके बीच स्नेहमय मधुर व्यवहार ही मठवासियोंके लिए ग्रहणीय तथा शिक्षणीय विषय है। बिना समालोचनाके कोई सेवक 'चिरदिनके लिए' हमें छोड़कर न जा पाए, क्या ऐसा कोई नियम बनाना सम्भव है? यदि आप ऐसी कोई रीति-नीति जानते हों, तो भविष्यमें कृपापूर्वक मुझे अवश्य ही बताएँगे। सुन्दरानन्द मुझपर मान-अभिमानकर क्यों चला गया, समझ नहीं पा रहा हूँ।

आगामी कल हमलोग टङ्गलासे वासुगाँव वापस लौट जायेंगे। हमें एक जनको चिरकालके लिए यहाँ छोड़कर जाना पड़ रहा है। अबसे मैं सेवक-विहीन हूँ। यदि

मैंने शुद्ध सरल हृदयसे श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा की होती, तो हो सकता है कि मुझे यह सेवकका वियोगजनित दुःख भोग नहीं करना पड़ता। मैं स्वयं ही सेवासे वञ्चित हूँ, इसीलिए मुझे उपयुक्त दण्ड मिला है। आपलोग मुझपर कृपा करें, जिससे मैं पार्थिव माया-ममताका परित्यागकर श्रीगुरु-वैष्णवोंसे ही प्रीति कर सकूँ। श्रीहरिसेवा ही मेरा जीवन तथा जीवनका एकमात्र कर्तव्य बन जाय। मैं पुनः आपको दण्डवत् प्रणाम करते हुए पत्रको समाप्त कर रहा हूँ।

मैं Partyके साथ माथाभाङ्गा, शिलिगुड़ि होकर आश्विन माहके बीचमें श्रीनवद्वीपधाममें आपके श्रीचरणोंमें पहुँचनेकी आशा करता हूँ। अधिक क्या लिखूँ, इति—

प्रणत दासाधम—
श्रीवामन

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ
शक्तिगढ़, पोः शिलिगुड़ि (दार्जिलिङ्ग)
१५/९/८२

श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नवति पूर्विकेयम्—

पूज्यपाद महाराज! आपका दिनाङ्क ९/९/८२को कलकत्ता मठसे लिखा हुआ कृपापत्र गतकल सन्ध्याकी डाकसे प्राप्त हुआ। मैं कल ही माथाभाङ्गासे यहाँपर दोपहर ११ बजे लौटा हूँ। गत ८/९/८२को बङ्गाइ गाँवसे शिलिगुड़ि पहुँचा तथा माथाभाङ्गासे २-३ पत्र पाकर ९/९/८२को वहाँ गया था। माथाभाङ्गामें "श्रीगौड़ीय सेवाश्रम" नामसे जो प्रचारकेन्द्र बाढ़में नष्ट हो गया था, स्थानीय व्यक्तियोंने दूसरी जगह जमीन दानकर वहाँपर आश्रम बना दिया है। गौराचाँद उसे अपने नामसे चला रहा था, इसलिए हमने उसे आजतक ग्रहण नहीं किया। अब वह उस आश्रमको छोड़कर आश्रमका बहुत सामान बेचकर वृन्दावन चला गया है। वहाँके स्थानीय सज्जन लोग बार-बार श्रीवेदान्त समितिसे उस आश्रमको ग्रहण करनेके लिए अनुरोध कर रहे हैं। मैं उन्हें बोलकर आया हूँ कि गौराचाँदके नामसे की गयी पूर्व दलीलको cancel करना होगा और हमारी वेदान्त समितिके नियमानुसार नयी दलील बनानेके बाद ही हम इस विषयमें विचार कर सकते हैं। इसपर वे सहमत हो गये हैं तथा नयी दलील बनानेके कार्यमें अग्रसर हुए हैं। इस विषयमें आपके अनुमोदनको मैं आवश्यक मानता हूँ।

श्रीमेघालय गौड़ीय मठके पतेपर मथुरासे आपके द्वारा ८/८/८२ को लिखा गया कृपापत्र ठीक समयसे मिल गया था। उसके द्वारा मुझे पूजनीय श्रील वन महाराजके अप्रकट संवाद, उनकी समाधि तथा विरहोत्सवका विवरण ज्ञात हुआ। उस पत्रमें आपके Tour Programme का Chart भी प्राप्त हुआ। आपके वर्तमान ९/९/८२ के पत्रको प्राप्तकर मैं समझ गया हूँ कि Tangla से मेरे द्वारा भेजा गया Telegram तथा पत्र कोई भी आपको प्राप्त नहीं हुआ। मैंने नवद्वीपके पतेपर उन्हें भेजा है।

आज १५/९/८२, बुधवारको मठके संन्यासी-ब्रह्मचारी सेवकोंने श्रीमान् सुन्दरानन्दकी ग्यारहवींके अवसरपर उसके स्मरणमें वैष्णव-सेवाका आयोजन किया। प्रायः २५० भक्तोंने इस उपलक्ष्यमें प्रसाद ग्रहण किया। सन्ध्याकालीन सभामें ५-६ संन्यासी-ब्रह्मचारियोंने वैष्णवोंकी महिमाके विषयमें वक्तृता प्रदान की। आपके

पत्रके एक विशेष अंशको निकुञ्जविहारी ब्रह्मचारीने पढ़कर सभामें उपस्थित श्रोतृमण्डलीको सुनाया। श्रीमान् सुन्दरानन्दके अभावमें वैष्णवगण मुह्यमान हो गये हैं तथा हृदयमें वेदनाका अनुभव कर रहे हैं—ऐसा समझा हूँ।

किन्तु आपके जैसे विश्रम्भ एकनिष्ठ सेवककी अस्वस्थताका समाचार पाकर मैं उससे भी अधिक दुश्चिन्ताग्रस्त तथा विकल हो गया हूँ। क्या आप हमारे धैर्यकी परीक्षा लेनेके लिए बार-बार इस प्रकार अस्वस्थताका अभिनय कर रहे हैं? पिछले वर्ष भी एकबार आपने ऐसे ही अस्वस्थ होनेका अभिनय किया था। **मैं नहीं जानता कि श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-श्रीराधा-विनोदबिहारीजीने हमारे भाग्यमें क्या लिखा है! आप मुझसे पहले किसी भी प्रकारसे नहीं जा सकते, कह देता हूँ। यदि श्रीगुरु-गौराङ्ग हमारी कातर प्रार्थनाको पूर्ण नहीं करते हैं, तो मैं स्वयंको हतभागा ही समझूँगा।**

आप अच्छी प्रकारसे चिकित्सा कराएँ तथा समयानुसार औषध तथा पथ्य आदि ग्रहणपूर्वक विश्राम कीजिए, यही मेरा आपसे विशेष अनुरोध है। जहाँ आपकी चिकित्सा अच्छे-से हो सकती है, जो चिकित्सक आपको पूर्णरूपसे स्वस्थ कर सके, वहींपर आपकी चिकित्साकी व्यवस्था करूँगा। **श्रीबनवारीलालजीने डाः सारेङ्गीके द्वारा आपकी सुचिकित्साकी व्यवस्था की है, यह जानकर मैं उन्हें विशेष धन्यवाद देता हूँ। सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णवोंकी सेवामें अपने प्राणोंको भी उत्सर्ग करनेवाले सिंहानीया परिवारकी हृदयसे की गयी सेवा तथा वैष्णवोंके प्रति उनकी स्नेह-प्रीति अतुलनीय है।** श्रीगौर-राधा-विनोदबिहारीजीने इन्हें विशेषरूपसे अपनी सेवामें स्वीकार किया है।

धीरे-धीरे आपका urine तथा blood sugar nil होना चाहिए। आपको चिकित्सकके परामर्शानुसार पथ्य ग्रहण करना आवश्यक है। इस समय आपके द्वारा पूर्णरूपसे विश्राममें रहनेसे ही आपके रोगके अतिशीघ्र ही दूर होनेमें सहायता होगी। आपके द्वारा अधिक चलना-फिरना नहीं करना तथा शारीरिक परिश्रम नहीं करना ही अच्छा होगा। अन्यान्य सेवकोंको निर्देश तथा परामर्श देकर उनकी सहायतासे ही कार्य करवानेसे चलेगा।

हमें ९८० bag cement मिल गये हैं तथा २२० bag cement और भी आ रहा है—ज्ञात हुआ। आप विजय बाबूको लेकर नवद्वीप जा रहे हैं, यह समझा। मैंने यह भी जाना कि पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज, आचार्य महाराज, कृष्णकृपा प्रभु आदि आपको देखनेके लिए कलकत्ता गये थे। **मैं दूरसे आपके कष्टको अनुभव करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।**

मुकुन्द कलकत्ता आया है तथा मैंने जाना है कि वहाँके case का favourable judgement हुआ है। गोपीकान्त पुरी छोड़कर हठात् मथुरा क्यों जा रहा है, कुछ समझा नहीं। मैंने आपका पत्र अचिन्त्यगौर प्रभु तथा त्रिदण्डि महाराजको पढ़ाया था। त्रिदण्डी महाराजके कुछ अमत[अन्य मत] होनेपर भी अचिन्त्य प्रभु नवद्वीपमें आपके पास जानेके लिए तैयार हुए हैं। उन्होंने आपके आदेश-परामर्शानुसार पुरी मठमें रहनेका सङ्कल्प लिया है। वे हमारे साथ ही नवद्वीप पहुँचेंगे। हम पार्टीके साथ ही आगामी २४/९/८२ को NJP Passenger से यात्रा करके उसी दिन भोरमें नवद्वीप पहुँचेंगे। २/१ दिनोंके लिए मुझे कलकत्ता जाना होगा।

वर्तमानमें मेरे साथ पार्टीमें कानाइ, गोवर्धन तथा स्वरूपानन्द हैं। संन्यासी महाराज तथा निकुञ्ज बीच-बीचमें आकर मेरे साथ रहते हैं। वे दोनों भी हो सकता है, मेरे साथ ही नवद्वीप पहुँचेंगे।

आप मेरी असंख्य दण्डवत्-प्रणति ग्रहण करेंगे। साक्षात् मिलनेपर सभी विषय कहूँगा तथा सुनुँगा। इति—

प्रणत दासाधम—

श्रीभक्तिवेदान्त वामन

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी पत्रावलीसे संग्रहीत अमृतमय उपदेश-बिन्दु

(निम्न २५ बिन्दु श्रीयुक्ता उमा दासीको लिखे गये पत्रोंसे संग्रहीत हैं।)

(१) सेवकके लिए सेवा-विश्राम जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। सेवा-क्षेत्रमें कोई concession या commission नहीं है, सेवा ही सेवाका फल है। परममुक्त पुरुषगण भी श्रीभगवान्‌की उपासना करते हैं अर्थात् उनकी सेवामें व्यस्त रहते हैं। इसलिए किसी भी अवस्थामें सेवक-सेविकाएँ सेवासे छुट्टी या अवसर ग्रहण नहीं कर सकते। किन्तु श्रीभगवान्‌के अशोक, अभय, अमृतके आधार स्वरूप श्रीचरणकमलोंमें आश्रय ग्रहण ही प्रकृत (यथार्थ) विश्राम है। वैष्णव महाजनने इसीलिए प्रार्थना की है—

अशोक अभय अमृत-आधार तोमार चरणद्वय।
ताहाते एखन विश्राम लभिया छाड़िनु भवेर भय॥

(पत्र दिनांक—१२ अगस्त, १९७१)

(२) श्रीविग्रहका दर्शन जिस प्रकार कानों द्वारा ही सुष्ठुरूपसे—भलीभाँति होता है, उसी प्रकार श्रीहरि-गुरुकी सेवा-पूजा भी परोक्ष [indirect] रूपमें अधिकतर भलीभाँति सम्पादित होती है। याज्ञिक पत्नियोंने जब श्रीकृष्णके समीप रहनेकी इच्छा प्रकाश की, तब श्रीभगवान्‌ने कहा—"मेरे श्रीनाम-रूप-गुण-लीलाका अनुशीलन करो, इसमें

तुम्हारा सुमङ्गल निहित है।" यहाँ पर मिलनसे विरह या विप्रलम्भ भाव श्रेष्ठ है, यही श्रीभगवान् विप्र पत्नियोंको समझा रहे हैं। जो साक्षात् दर्शन प्राप्त करते हैं, उनके लिए अनेक स्थलोंपर भूल-भ्रान्तिका अवसर रहता है—'Too much familiarity brings contempt' वाक्य ही इसका प्रमाण है। गुरु-वैष्णवोंका सान्निध्य इसलिए निषेध नहीं हुआ—किन्तु, *'वन्दो मुईं सावधान मते'*—वाक्य विशेष विवेचनाका विषय है। अतः प्रत्यक्ष और परोक्ष दर्शनमें कौन-सा अधिक लाभवान है—यह विषय विचारणीय है। साधु-शास्त्र-गुरुवाक्य ही इस विषयमें श्रेष्ठ प्रमाण हैं।

(पत्र दिनांक—१२ अगस्त, १९७१)

(३) जब तक जागतिक स्त्री-पुरुषका अभिमान रहता है, तब तक अप्राकृत नवीन मदन (कृष्ण) की साक्षात् सेवा सम्भवपर नहीं है। हृदयमें स्थित योषित् भाव अर्थात् परस्पर (स्त्री-पुरुषकी) आसक्ति परित्याग करनेसे ही श्रीभगवान् जीवको अपना सेवाधिकार प्रदान करते हैं। उसमें प्राकृत स्त्री-पुरुष भावकी कोई प्रधानता नहीं है।

साधक-साधिकाके द्वारा अपनी अयोग्यताके विषयको समझनेसे उनके कल्याणकी सम्भावना है। प्राकृत अहम् भाव और कपटता ही साधन-भजनकी बाधा स्वरूप है, जो जीवको महा-अन्ध करता है और वे भक्ति पथसे दूर निक्षिप्त होते हैं।

(पत्र दिनांक—७ अप्रैल, १९७२)

(४) यथार्थ सद्गुरु किसीको शिष्य नहीं बनाते हैं। वे अपने परम सेव्य भगवान्के वैभवके रूपमें ही उनका दर्शन करते हैं। कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव 'अयोग्या किङ्करी' रूपमें अपने सिद्ध-स्वरूपका परिचय प्रदान करते हैं। विचार किए बिना गुरुकी आज्ञाका पालन करना ही शिष्यका शिष्यत्व है एवं पूर्ण शरणागति ही शासन स्वीकार करनेका माप-दण्ड है। स्नेह-शासन द्वारा अवश्य ही चित्त-शुद्धि होती है। श्रीगुरुदेवके आदेश और निर्देशके अनुसार जीवन पथमें अग्रसर होना ही प्रत्येक वास्तवधर्मी साधक-साधिकाका काम्य है।

(पत्र दिनांक—७ अप्रैल, १९७२)

(५) *उत्तम हइया आपनाके माने तृणाधम'*—यही विचार ही श्रीगुरु-भगवान्की कृपाप्राप्तिकी योग्यता या मापदण्ड है। भक्तिवृत्ति उदित न होनेसे 'अयाचित कृपा' का कोई स्थान है क्या? अहैतुकी करुणा शर्ताधीन [conditional] नहीं है, किन्तु भक्तिविहीन अवस्थामें वह प्राप्त नहीं होती। *'योग्यता विचारे किछु नाहि पाइ तोमार करुणा सार'* यह साधक-साधिकाकी दैन्य-बोधक प्रार्थना है। श्रीगुरु और भगवान्को पानेके लिए सुयोग्य अधिकारमें प्रतिष्ठित होनेके लिए ही भक्त वैसा स्वभाव-सुलभ दैन्य प्रकाश करनेमें अभ्यस्त होते हैं एवं यही उनका सद्गुण है या साधन सम्पत्ति है तथा यही भक्तकी बहादुरी है। प्राकृत दम्भ एवं अहङ्कार रहनेसे अहैतुकी कृपाकी उपलब्धि नहीं होती और उससे सेवाभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकती, अन्तर्यामित्व बोधगम्य नहीं होता। जड़ अभिमान ग्रस्त होनेसे जीव 'कूप-मण्डुक' विचारमें आबद्ध होता है। पृथ्वी, जो उसे धारण किए हुए हैं, उसे भी तुच्छ समझता है, किन्तु आश्रितजन भक्तिके बलसे समस्त बाधा विपत्तिसे उतीर्ण होकर गुरु और भगवानकी अप्राकृत असमोर्ध्व करुणामें उद्भासित होते हैं।

(पत्र दिनांक—६ जून, १९७२)

(७) पूर्ण आत्मसमर्पण साधक-साधिकाका एकमात्र लक्ष्य है। साधनमें पूर्णता न आनेसे भगवान् बहुत दूर हैं, इसका प्रमाण द्रौपदी, (कात्यायनी व्रत करनेवाली) व्रजकुमारियाँ हैं।

(पत्र दिनांक—६ जून, १९७२)

(८) गुरुदेव आश्रय-विग्रह-भगवान्की प्रेष्ठा सेविका हैं। श्रीगुरुतत्त्व शक्ति या प्रकृति है। श्रीभगवान्की सेवा-शिक्षा ही उनके स्वरूपका धर्म है। श्रीगुरुदेव

गोपिका-सखीकी अनुगता सेवा अधिकारिणी हैं। विषय-विग्रह भोक्ता-भगवान्‌के सेवा-विलासमें वह सुदक्षा वल्लभा हैं। *'छोड़त पुरुष अभिमान, किंकरी हइलु आजि कान। व्रज विपिने सखी साथ, सेवन करबों राधानाथ'* यही सिद्ध जनोंका स्वरूप है। बाह्य पुरुष वेश रहनेपर भी वे गोपी-भाव प्राप्ता सखी या दासी हैं। अप्राकृत नवीन-मदनकी लीला-विलासमें सहायता करना ही उनकी एकमात्र सेवा है।

(पत्र दिनांक—६ जून, १९७२)

(९) श्रीरूपानुग गौड़ीयगणोंकी भजन पद्धतिका वैशिष्ट्य यही है कि वे व्रजमें रहकर श्रीनवद्वीप-धामकी प्रतिक्षण चिन्ता करते हैं और गौरभूमि नवद्वीपमें वासकर व्रजवनके स्मरणमें निमग्न रहते हैं। इसीलिए श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने क्रमशः गान किया है, *'श्रीगौड़मण्डल भूमि जेवा-जाने चिन्तामणि तार हय व्रजभूमे वास', 'बड़ कृपा करि गौर-वन माझे गोद्रुमे दियाछ स्थान। आज्ञा दिला मोरे एइ व्रजे बसि हरिनाम कर गान'* इत्यादि। [अप्राकृत] सेवा चिन्ता ही भजन है, जिस स्थान पर रहकर ऐसा सुयोग प्राप्त हो, वही वृन्दावन या नवद्वीप धाम है।

(पत्र दिनांक—४ जनवरी, १९७४)

(१०) निष्कपट रूपसे श्रीगुरु-वैष्णवोंकी सेवा-आकांक्षाके अलावा हमारा कोई अन्य विषय प्रार्थनीय नहीं है। उनकी कृपाके प्रभावसे ही हृदयके समस्त अनर्थ-अपराध दूर होते हैं। श्रीभक्त-भगवान्‌की कृपा-भिक्षा ही हमारा एकमात्र सम्बल (सहारा) है। कातर क्रन्दन ही अहैतुकी करुणा प्राप्तिका उपाय है—*'करुणा ना हइले कांदिया कांदिया प्राण ना राखिब आर।'* हे भगवान्‌! आप मुझे दण्ड प्रदान करें अथवा दया करें, इस संसारमें आपके बिना मेरी अन्य कोई गति नहीं है। आप शतकोटि वज्र मेरे ऊपर निक्षेप करें अथवा स्वच्छ वारि (वर्षा) प्रदान करें, तथापि भक्त-चातक मैं आपकी कृपा-वारिके लिए अधीर होकर प्रतीक्षा करूँगा। यही कृपा प्रार्थीका भाव और भाषा है। Causeless mercy and unconditional surrender अङ्ग-अङ्गीके रूपमें सम्पर्कयुक्त हैं। साधन और कृपा दोनोंका ही युगपत् (एकसाथ) प्रयोजन है। एकका भी अभाव होनेसे सिद्धिकी प्राप्ति असम्भव है।

(पत्र दिनांक—४ जनवरी, १९७४)

(११) प्राकृत दर्शनका अभाव होनेसे अप्राकृत दास्य-सख्य-वात्सल्य आदि भावके भक्त भगवान्‌के नित्य दर्शन प्राप्त करते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों दर्शन ही नित्य हैं। जागतिक मिलन और विरह एवं अप्राकृत सम्भोग और विप्रलम्भ भावमें आकाश-पातालका पार्थक्य है। उसमें मिलनकी तुलनामें विरहमें माधुर्यका श्रेष्ठत्व अधिक कहकर वैष्णव दार्शनिकोंने स्वीकार किया है। अहङ्कार, अविश्वास एवं कपटता रहनेसे इस तत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती।

(पत्र दिनांक—४ जनवरी, १९७४)

(१२) श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपा और दण्ड एक ही तात्पर्यपर हैं। इसलिए 'स्नेह-शासन' और 'कृपा-दण्ड' शब्द शास्त्रोंमें व्यवहार किये गये हैं। जीव कल्याणके लिए जिनका जीवन है, दूसरेके दुःखमें दुःखी होना जिनका स्वभाव है, उनका शासन और अभिसंपात(दण्ड) एक ही उद्देश्य युक्त हैं। सेवा और अधिकारके भेदसे साधक और साधिकाके हृदयमें तत्त्व-स्फूर्त्तिका तारतम्य घटित होता है—यही तत्त्व और सिद्धान्त है।

(पत्र दिनांक—४ जनवरी, १९७४)

(१३) तीर्थ और धामका जो पार्थक्य और वैशिष्ट्य है, वह सत्सङ्गके फलसे ही जाना जा सकता

है। भोगी-विलासी मानवकुल अपनी इन्द्रियतृप्तिकी लालसासे जगत्‌में घूमते रहते हैं। और भक्तगण भजनानुकूल परिवेश स्वीकार कर धन्य होते हैं—*'गौर आमार, जे सब स्थाने करल भ्रमण रङ्गे, से सब स्थान, हेरिब आमि, प्रणयी भकत सङ्गे।'* यही भजनशील व्यक्तियोंका पादसेवन रूपी भक्त्यङ्गका याजन है। श्रीधाम-परिक्रमा करनेसे जीवका मायिक बन्धन दूर होता है तथा भगवान्‌के प्रति अप्राकृत आसक्ति उदित होती है। *'विषय जे प्रीति एबे आछये आमार, सेइ मत प्रीति हउक चरणे तोमार।'* यही धाम परिक्रमाकारी भक्तोंका प्रार्थनीय विषय है।

(पत्र दिनांक—४ जनवरी, १९७४)

(१४) गुरु-वैष्णवोंकी अपार करुणा और अपार्थिव स्नेहका ऋण कभी भी परिशोध नहीं किया जा सकता। हरिभजन करनेसे उस ऋणकी उपलब्धि होती है और जीवन धन्य होता है। भगवद्-भजन कर पानेसे ही जीवकी योग्यता प्रमाणित होती है। परम प्रेमास्पद श्रीभगवान्‌को प्रीति करनेसे ही जीवका जीवन सफल होता है। साधन-भजनमें प्रवृत्ति प्राप्त करनेसे अमानी-मानद धर्ममें आस्थाशील हुआ जाता है।

अपनेको अयोग्य-अधम जाननेसे दैन्य-दशा उपस्थित होती है। इसके द्वारा ही गुरु-वैष्णवोंकी कृपा-ग्रहणकी योग्यता आती है। सेवाधर्ममें धैर्य है, उद्दीपना है, किन्तु ईर्ष्या या हिंसाका स्थान नहीं है। भजन-साधनके मार्गपर मात्सर्यका कोई काम नहीं है, अतः यह सम्पूर्ण रूपसे परित्यक्त है।

(पत्र दिनांक—२३ अगस्त, १९७४)

(१५) अभ्यास-योग अल्प समयमें ही करतलगत(सिद्ध) नहीं होता, यह समय-सापेक्ष है। इसलिए हिमालयकी भाँति अटल-अचल और धैर्यशील होना होता है। शरणागतिके क्षेत्रमें श्रीभगवान्‌की कृपापर निर्भरता विशेष लक्षणके रूपमें कथित हुई है। अभ्यास योग द्वारा ही संध्या-गायत्री जप आदिमें चित्तकी स्थिरता आती है और गायत्री मन्त्र आदिके अर्थकी उपलब्धि होती है। जो अपने दोष-त्रुटिको समझ सकता है, अति अल्प कालमें ही वह उसे संशोधन करनेमें प्रयत्नशील होता है। गुरु-वैष्णवोंकी श्रीमुख निःसृत वाणीका (अनुपठन) अनुशीलन करनेसे कल्याण होता है, वही *'आवृति रसकृत उपदेशतः'* वेदान्त-सूत्रमें विवृत हुआ है। वेदान्तके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्‌भागवतमें भी वही *श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादयः वर्णयेत् यः.....हृद्‌रोगमासु अपहिनोत्यचिरेण धीर।"* वाक्य प्रतिध्वनित हुआ है। श्रीगुरु-वैष्णवोंके आश्रय या आनुगत्यमें रहनेसे किसीको कोई भय नहीं है, उसको 'सब जानता हूँ' रूपी नास्तिक नहीं होना पड़ता।

(पत्र दिनांक—२३ अगस्त, १९७४)

(१६) असहिष्णु जीव श्रीचैतन्य-शिक्षाके अभावमें भोग और त्यागकी वृत्तिको प्राप्तकर शान्ति प्राप्त करना चाहता है। सहनशीलता न रहनेसे हमारा कल्याण कभी भी उदित नहीं हो सकता। स्व-पर मङ्गल कामना ही साधुका लक्षण है। स्वार्थपरता जीवको असहिष्णु कर देती है। भगवद् सृष्ट समस्त वस्तुएँ श्रीभगवान्‌की सेवाकी उपकरण हैं—यह विचार न आनेसे हमारे मङ्गलकी कोई भी सम्भावना नहीं है। भोगी जीवगण जगत्‌को अपना भोग्य विचारकर ही वञ्चित होते हैं और ध्वंसको प्राप्त होते हैं। वृक्षकी भाँति सहिष्णु न होनेसे हरिभजन सम्भव नहीं है। इसीलिए श्रीमन्महाप्रभुने *'तृणादिप-सुनीचेन'* श्लोकका उपदेश दिया है।

(पत्र दिनांक—२३ अगस्त, १९७४)

(१७) *'तव निज जन परम बान्धव संसार कारागारे', 'वैष्णव देखिया प्रणति करिब हृदयेर बन्धु जानि'*—यह उपलब्धिका विषय है। गुरु-वैष्णवोंके दर्शनसे जिनका हृदय आनन्दसे उद्वेलित होता है, वे ही वास्तवमें शान्त और निष्काम भक्त हैं। शास्त्रमें साधु-गुरु-भगवान्‌की

प्रीति और सेवाका विषय ही विशेष रूपमें उपदिष्ट हुआ है, क्योंकि *'कृष्णभक्ति जन्ममूल हय साधुसङ्ग'।*

(पत्र दिनांक—२३ जून, १९७५)

(१८) जगत्के लोग प्राकृत कुशल-अकुशल लेकर ही व्यस्त हैं। जो आत्मकल्याण-कामी हैं, उनके लिए उस प्रकारके अच्छे-बुरेकी आवश्यकता नहीं है। वे सेव्य-सेवक भावसे सेवामें ही सर्वदा मग्न रहते हैं। जिस विषयमें श्रीभगवान्-भक्त-भक्तिका कोई भी सम्पर्क नहीं है, उसे भक्तगण कभी भी स्वीकार नहीं करते। अनावश्यक जानकर इस प्रकारके दुसङ्गसे सर्वदा दूर रहते हैं। आत्माके स्वास्थ्यको लेकर ही वे विचार करते हैं, तथा उस प्रकारके अनुशीलनमें ही आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि साधन-भजन न हुआ तब देह और मनकी खुराकको जुटानेसे लाभ क्या? आत्मकल्याणशील व्यक्तिका देह-मन सबकुछ ही सेवासुख तात्पर्यपर होनेसे सर्वदा उनका वैशिष्ट्य स्वीकृत हुआ है। इसीलिए कर्म-ज्ञान-योगादि प्रचेष्टा निरस्त होनेसे ब्रह्म-जिज्ञासा और भक्ति-जिज्ञासाका क्षेत्र रचित हुआ है।

(पत्र दिनांक—२३ जून, १९७५)

(१९) हृदयरूपी गुण्डिचा (मन्दिर) परिमार्जित होनेसे वहीं जगन्नाथदेव श्रीकृष्णचन्द्र स्थान प्राप्तकर प्रसन्न होते है। ऐश्वर्यकी अपेक्षा माधुर्यकी श्रेष्ठता है, श्रीजगन्नाथ द्वारका या कुरुक्षेत्रसे वृन्दावन यात्रा करते हैं—यही रथयात्राका तात्पर्य है। चित्त जब तक उस अप्राकृत अवस्था तक उन्नत न हो, तब तक *'वरज विपिने सखी साथ, सेवन करबूँ राधानाथ। कुसुमे गाथबु हार, तुलसी मणि-मञ्जरी तार।'* यह सब स्फुरित नहीं होगा।

(पत्र दिनांक—११ जुलाई, १९७६)

(२०) आश्रय एवं आश्रितके परस्पर सम्बन्ध-ज्ञानसे ही भजन पथमें योग्यता और आग्रह बढ़ता है। गुरु-वैष्णवोंके अनुग्रहके बिना हमारा भजनपथमें अग्रसर होनेका कोई विकल्प, व्यवस्था नहीं है एवं हो भी नहीं सकती। अनुग्रहसे वञ्चित होना या भजनसे च्युत होना एक ही बात है। यही साधक-साधिकाकी चरम दुर्गति या दुर्दैव है। गुरु-वैष्णवोंकी अप्राकृत गुणावली और अतिमर्त्यता प्राकृत ज्ञान और बुद्धिके अगोचर है। उस क्षेत्रमें *'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'*—यही योग्यताका एकमात्र मापदण्ड है।

(पत्र दिनांक—२४ सितम्बर, १९७६)

(२१) सेवावृत्ति ही शरणागतका आभूषण है। सर्वस्व सेवामें नियुक्त करनेका नाम ही पूर्ण आत्मसमर्पण है। शरणागत या समर्पित जीवका सेवाके अलावा दूसरा अभिनिवेश या अन्य कामना-वासना नहीं होती, वहाँ commercial interest या प्राकृतिक लेन-देनकी क्रिया रह नहीं सकती। अपने लिए percentage हिसाब रखनेकी बुद्धि आनेसे 'पद्मा-नीति' (कंसकी माता पद्मावतीकी नीति) आ पड़ती है। तब वह सेवाकी मनोवृत्ति नहीं, प्राकृत कर्मका अङ्ग हो पड़ता है। मैं कीट, अधम-पामर हूँ—ऐसा विचार आनेसे मङ्गलकी सम्भावना है। किन्तु, यह भावना प्रतिष्ठाशा और सौभाग्य-स्थापनके लिए होनेसे विषवत् क्रिया करेगी।

(पत्र दिनांक—२४ सितम्बर, १९७६)

(२२) श्रीगुरु-वैष्णवोंके शुभ-आविर्भाव-तिथिपर उनका गुणगान करनेसे जीवोंका कल्याण अवश्यम्भावी है— *'हरि गुरु वैष्णव तीनेरे स्मरण। तीनेर स्मरणे हय विघ्न विनाशन।', 'वैष्णवेर गुणगान करिले जीवेर त्राण।'* यही शिष्टाचार सम्मत विधि है। साधक-साधिकाकी जितनी प्रकारकी अयोग्यता, दुख-दैन्य उनके ही हिसाब-किताब (evaluation) का शुभ लग्न या मुहूर्त उस तिथिको आश्रय करता है। अनुशोचना या अनुताप ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है, उसके द्वारा ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। सदाचार निष्ठा न होनेसे हृदय शुद्ध नहीं होता।

Christianity में confession या पाप स्वीकृतिकी जो व्यवस्था है, वह सनातन आर्य शास्त्रसे ग्रहण की गयी है। *"प्रभु बले आर तोरा ना करिस पाप। जगाई माधाई बले आर नारे बाप"*—स्वीकारोक्ति अनुताप या प्रायश्चित्‌के ही अङ्गीभूत है। स्वयं श्रीमन्महाप्रभुने गुरु नित्यानन्दके सामने जगाई-माधाईसे ऐसी प्रतिज्ञा करवाई है। इस प्रकारकी दृढ़ प्रतिज्ञा न होनेसे पाप-प्रवृत्ति आ कर चित्त-वृत्तिको कलुषित करनेकी चेष्टा करती हैं।

(पत्र दिनांक—१२ फरवरी, १९७७)

(२३) तद्रूपवैभव नववनकी अराधना न करनेसे मायापुर-धाम सेवक-सेविकाके निकट आत्मप्रकाश क्यों करेंगे? श्रीधामके प्रति जड़-ग्राम बुद्धि करनेसे धामापराध हो जाता है। श्रीधामकी कृपा द्वारा ही धामके चिन्मय स्वरूपकी उपलब्धि होती है, तभी धामकी निष्कपट करुणाका परिचय पाया जाता है। *'माया कृपा करि जाल उठाय जखन, आखि देखे सुविशाल चिन्मय भवन'*, यही अप्राकृत दर्शन है। धाम, धामेश्वर और धाम-आश्रित साधुओंके प्रति अवज्ञा, धामापराधके अन्तर्गत है। श्रीगौड़धामकी कृपा होनेसे ही अप्राकृत व्रजधामकी सेवाका अधिकार पाया जाता है। इसलिए गौरनिजजन श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयने गान किया है—*'श्रीगौड़मण्डल भूमि जेवा जाने चिन्तामणि, तार हय ब्रज भूमे वास।'* इसलिए धामापराधको आह्वान करनेकी अपेक्षा दूर रहकर धामवासियोंकी सेवा-आकांक्षा और उनका स्मरण करना अनेक गुण श्रेष्ठ है।

(पत्र दिनांक—२१ नवम्बर, १९७७)

(२४)

भ्रमिब द्वादश वने, रस केलि जे-जे स्थाने
प्रेमावेशे गड़ागड़ि दिया।
सुधाइब जने-जने, व्रजवासी-गण-स्थाने
निवेदिब चरणे धरिया॥

नित्यसिद्ध महात्माओंने अकिञ्चन होनेपर भी बद्ध जीवकी बद्धताको दूर करनेके लिए ही ऐसी प्रार्थना की है। स्थान-काल-पात्रके अनुसार माहात्म्य अवश्य ही स्वीकार्य है। प्राथमिक अवस्थामें लीलाका अप्राकृतत्व उपलब्धि न होनेपर शुद्धहृदयमें अप्राकृत श्रीधामके स्वरूपकी स्फूर्त्ति होती है। चिन्मय धामका वैशिष्ट्य अयोग्य और अनाधिकारीको भी अपने अधिकारमें प्रतिष्ठित करता है। गौड़-व्रजवनके अभेदत्व विचारसे श्रीधामवासकी योग्यता और चिन्मयता और श्रीधामस्वरूपकी उपलब्धि होती है। व्रजनवयुवद्वन्द्व श्रीश्रीराधा-गोविन्दके प्रेष्ठालिके (प्रिय सखीके) आनुगत्यमें सेवाप्राप्ति समस्त प्राप्तिकी पराकाष्ठा स्वरूप है।

(पत्र दिनांक—१३ दिसम्बर, १९७९)

(२५) प्रेम घनीभूत होनेसे स्नेह, मान, प्रणय, अनुराग, भाव, महाभाव कहलाता है। महाभाव ही सर्वश्रेष्ठ स्तर है। यद्यपि किसी-किसी स्थानपर भाव और महाभावका प्रायः एकत्व लक्ष्य किया जाता है, परन्तु वास्तवमें स्नेह, मान, प्रणयादि जड़ देहमें कभी भी सम्भव नहीं हैं। जातरति या प्रेमप्राप्त व्यक्तिमें ही इसका प्रकाश सम्भव है। श्रीराधारानी कृष्णकान्ता-शिरोमणि हैं। वे कृष्ण-प्रेमकी घनीभूत अवस्था (स्वरूप) हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है एवं प्रेमका सार है—महाभाव। श्रीराधा महाभाव स्वरूपिणी हैं। श्रीराधा ही प्रेमकी अधिष्ठात्री हैं। कृष्ण सेवासुख-तात्पर्य ही उनका जीवन स्वरूप है। श्रीराधापूर्ण शक्ति एवं श्रीकृष्ण पूर्णशक्तिमान। श्रीराधा कृष्णगतप्राणा, समस्त इन्द्रियोंमें उनको कृष्णानुभूति होती है, वे कृष्णमयी हैं। स्वराट् लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र प्रेम द्वारा ही वशीभूत होते हैं, इसलिए श्रीराधा-प्रेमके निकट श्रीकृष्ण वशीभूत और पराजित हो जाते हैं। महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधाके अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्रका माधुर्य विकास या प्रकाशित नहीं होता।

(पत्र दिनांक—२५ अगस्त, १९८४)

(निम्न १६ बिन्दु श्रीमती रमा देवीको लिखे गये पत्रोंसे संग्रहीत हैं।)

१) ८४ लाख बार जन्मग्रहण करनेके बाद हमलोग आदर्श गृहस्थके घरमें, अविकलाङ्ग शरीरमें, ज्ञान-विवेक-बुद्धि-वैराग्य प्राप्तकर मनुष्यजन्मको प्राप्त हुए हैं। इसे श्रेष्ठ जन्म, दुर्लभ जन्म कहा गया है। इसे प्राप्त किया है, इसलिए यह सुलभ है, परन्तु बहुत जन्मोंके बाद, लाख-लाख जन्मोंके बाद प्राप्त किया है, इसलिए दुर्लभ है। इसका अपव्यवहार नहीं करूँगा—ऐसी प्रतिज्ञा लेनी होगी। इस प्रतिज्ञाकी बात शास्त्रोंमें कही गयी है। जब भगवान्ने हमें श्रेष्ठ आसन पर बिठाया है, तब उस श्रेष्ठताको बनाये रखना होगा।

२) जागतिक स्नेह-ममतामें आत्यन्तिक कल्याण नहीं है। बद्धजीव यदि अपना समस्त स्नेह श्रीगुरु-भगवान्को समर्पण करता है, तब उसकी सार्थकता है। स्नेह-ममताके उद्दिष्ट वस्तुके अभावमें ही मनुष्यको कष्ट होता है। यथार्थ स्नेह-ममता रहने पर, उसकी अप्राप्तिमें क्रन्दन अनिवार्य है। यदि तुमने वास्तवमें भगवान्को प्रेम किया है, तब तुममें अवश्य ही गुरुदेवकी स्मृति बनी रहेगी एवं उनके दर्शनकी आकांक्षा प्रबल होगी।

३) मेरे साक्षात् रूपसे न रह पाने पर भी मैं तुम्हारे निकट परोक्ष रूपसे हूँ और रहूँगा। मुझे महाप्रसाद दिये बिना तुम कदापि माँका दायित्व पालन नहीं कर सकतीं।

४) जीवनके अन्तिम क्षणमें तुम श्रीहरि-गुरु-वैष्णवको नहीं भूलोगी, यही मेरी विशेष शुभेच्छा है। जीवनके हर क्षण हमें श्रीभगवान्के निकट परीक्षा देनी होगी। श्रीगुरु-वैष्णवोंकी दया अहैतुकी है, वह किसी प्राकृत स्नेह-ममताकी अपेक्षा नहीं रखती। वे लोग जिसे अपना लेते हैं, उसे कदापि दूर नहीं फेंकते अथवा उनका स्नेहार्थी कभी भी स्नेहसे वञ्चित नहीं होता। गुरु-वैष्णवोंके अपार्थिव स्नेह-दयाकी कोई तुलना नहीं है।

५) श्रीगुरु और भगवान् अन्तर्यामी हैं, अतः उनको समस्त बात न बोलने पर भी वे अनभुव कर सकते हैं या समझ सकते हैं। वे अन्तर्दर्शी होते हैं, किसीके निजस्व वक्तव्यकी अपेक्षा नहीं रखते, यही उनकी विशेष बहादुरी(महिमा) है। गुरु-भगवान्के निकट विवृति देनेसे पहले ही वे अवस्था समझकर व्यवस्था कर देते हैं। यही उनका भविष्य-दर्शन या त्रिकालज्ञत्व है।

६) अन्योंके प्रति संशयपूर्ण मनोभाव दुःखका कारण है। इसे धोखाबाजी (छल) न कहकर 'मानसिक अशान्तिका आकर (मूल)' के रूपमें व्याख्या करना ही सङ्गत है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सखा अर्जुनको लक्ष्यकर जगत्के लोगोंको उपदेश दिया है—'अज्ञ, अश्रद्धालु और संशयात्मा—इन तीन प्रकारके व्यक्तियोंके जीवनमें सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती है। यदि तुम उस संशय और सन्देहवादको पालती हो, तब तुम्हें कदापि शान्ति नहीं मिलेगी।

७) श्रीगुरु-वैष्णवोंके प्रति सन्देह या अश्रद्धा होनेसे साधक-साधिकाके साधन-भजनमें उन्नति न होकर अवनति घटती है। जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्ति, स्नेह-ममतामें उत्तीर्ण हैं, उनकी कदापि परीक्षा नहीं की जाती। बल्कि उनके निकट परीक्षा देकर आत्मकल्याण प्राप्त करना परम सौभाग्यकी बात है। गुरु-वैष्णवगण शिक्षार्थी या विद्यार्थी नहीं हैं, वे परीक्षक और अभिभावक हैं। उनपर सदैव निर्भरता और विश्वास स्थापन कर पानेपर हमें आत्यन्तिक कल्याण प्राप्त होता है।

८) वैष्णवोंके प्रति श्रद्धा-भक्ति ही उनके प्रति वास्तव स्नेह-ममताका लक्षण है। स्नेह-ममतामें गम्भीरताकी वृद्धि गुरु-वैष्णवोंको अपना लेनेमें प्रकाशित है। वास्तवमें अपार्थिव स्नेह-ममताकी कोई तुलना नहीं है एवं उसे प्राकृत भाषामें व्यक्त करना असम्भव है।

९) यदि तुम अपने गुरुदेवको शक्तिजातीया मानती हो, गुरुपादपद्मको यदि तुम प्रधाना अष्टसखीकी अनुगता प्रियसखी, प्राणसखी, नित्यसखीकी आनुगत्यकारिणीके रूपमें स्मरण करती हो, तब मञ्जरी रूपमें उनके

लिए 'श्रद्धास्पदासु' पाठ यथार्थ है। श्रीगुरुपादपद्म ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा, रङ्गदेवी और सुदेवी—इन प्रधाना अष्टसखीकी एवं मणिकुन्तल (प्रियसखी), कादम्बरी मणिमञ्जरी (प्राणसखी) और नित्यसखीगणकी आनुगत्याभिमानी श्रीरूपमञ्जरी, रागमञ्जरी, रतिमञ्जरी, लवङ्गमञ्जरी, गुणमञ्जरीकी अधीनस्था होकर श्रीराधामाधवकी विविध सेवाओंमें नियुक्त हैं। वे श्यामा, पद्मा, शैव्या आदि चन्द्रावलीकी सखियोंका आनुगत्य न कर श्रीराधारानीका पक्षपातित्व करती हैं। यही उनकी भजननिष्ठा है।

१०) अपने स्वरूपके विषयमें विशेष रूपसे अवगत होनेपर साधन-भजन पथपर अग्रसर होनेके लिए निश्चय ही सुविधा होगी। दास्य-रस ही प्राथमिक स्तर है, उसके बाद सख्य, वात्सल्य और मधुर-रसमें साधक-साधिकाको आत्मस्वरूपके भावके अनुसार भजन करनेका निर्देश है। इस विषयको तुम स्वयं अनुभव करोगी।

११) इस संसारमें कुशल-अकुशल प्रश्न स्वयंको केन्द्र करके है। जीवात्माके द्वारा अपना स्वरूप भूल जानेपर भगवान्‌के साधन-भजनमें कोई कुशलता प्रमाणित नहीं होती। फिर भी लौकिक-व्यवहारिक जगत्‌में एक कुशल प्रश्न रह जाता है। अतः शारीरिक और मानसिक कुशलतासे अधिक 'भजन-कुशल' की जिज्ञासा ही हमारा वास्तव प्रसङ्ग है। मनुष्य संसारमें सदैव जीवित नहीं रहता है। परन्तु उसकी नीति-आदर्शसे उदित स्मृति उसे जीवित रखती है।

१२) अन्वयमुखी विचार ग्रहण करते हुए सब प्रकारसे श्रीविग्रहकी सेवापूजामें व्रती होनेपर 'रसो वै सः' तत्त्वको प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् स्निग्ध भक्तके ही वशीभूत होते हैं। जो लोग मन-प्राण देकर भगवान्‌को एकमात्र रक्षाकर्त्ता और पालक-पोषकके रूपमें स्वीकार करते हैं, जो भगवान् और भगवद् भक्तको कदापि गलत नहीं समझते, वे ही साधन-भक्तिके बाद भावभक्ति और प्रेमभक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ हैं। गुरु-वैष्णवगण जिसे अपना लेते हैं, उसे सदैव प्रत्यक्ष-परोक्ष रूपमें भजनमें सहायता करते हैं। इसे वास्तव सत्य जानना। बद्धजीवकी वास्तव अनुभूति नहीं है, ठीक है, फिर भी प्रिय परम-उपास्य तत्त्वको निकटमें पानेके लिए सभीमें विशेष आग्रह देखा जाता है। साक्षात् रूपसे स्नेहाशीर्वाद पानेका अवसर न मिलने पर क्या लेखनीके माध्यमसे वह वास्तविकतामें बदल नहीं जाता?

१३) कनिष्ठ भक्त कनिष्ठ भक्तको उपदेश नहीं कर सकता। वे आपसमें कथोपकथन करनेके अधिकारी हैं। मध्यम अधिकारी वैष्णव हमें साधन-भजनके लिए उपदेश-निर्देश देनेके लिए सब प्रकारसे योग्य अधिकारी हैं। उत्तम अधिकारी स्वानुभवानन्दी होकर अप्राकृत युगल-भजनमें एकनिष्ठ होते हैं। अतः उपदेशके लिए मुझे अपनेसे अधिक उन्नत अधिकारी वैष्णवको चुनना होगा एवं उनके साथ कथोपकथन करने पर मेरा पारमार्थिक जीवन उन्नत और धन्य होगा।

१४) गुरु-वैष्णवोंका अप्राकृत स्नेह प्राप्त करनेके लिए जिस विषयमें सद्‌गुण रहना आवश्यक है, उसे मुझे अवश्य ही प्राप्त करना होगा। यदि स्नेह अपार्थिव अप्राकृत अवस्था प्राप्त करता है, तो उसमें वञ्चित होनेकी सम्भावना कहा है? एक बार निर्मत्सर गुरु-वैष्णवके स्नेह-धन्य हो सकने पर वहाँ वञ्चित होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

१५) हमारे अत्यन्त निजजन अर्थात् श्रीगुरु-वैष्णव-भगवान् हमारे अत्यन्त निकट ही अवस्थान करते हैं। सब समय उनका सान्निध्य और अहैतुकी करुणा हृदयमें अनुभव करना ही साधन-भजनका मूल लक्ष्य है। गुरु-वैष्णवको अपना न सोच पाने पर साधन-भजनमें वास्तव अनुभूति कहाँ है?

१६) यदि किसी व्रत-उपवासको पालन करना हम भूल जाते हैं, तो अगले दिन उस उपवासको करना होगा एवं उसके अगले दिन उचित समय पर पारण (व्रत खोलने) की व्यवस्था करनी चाहिए।

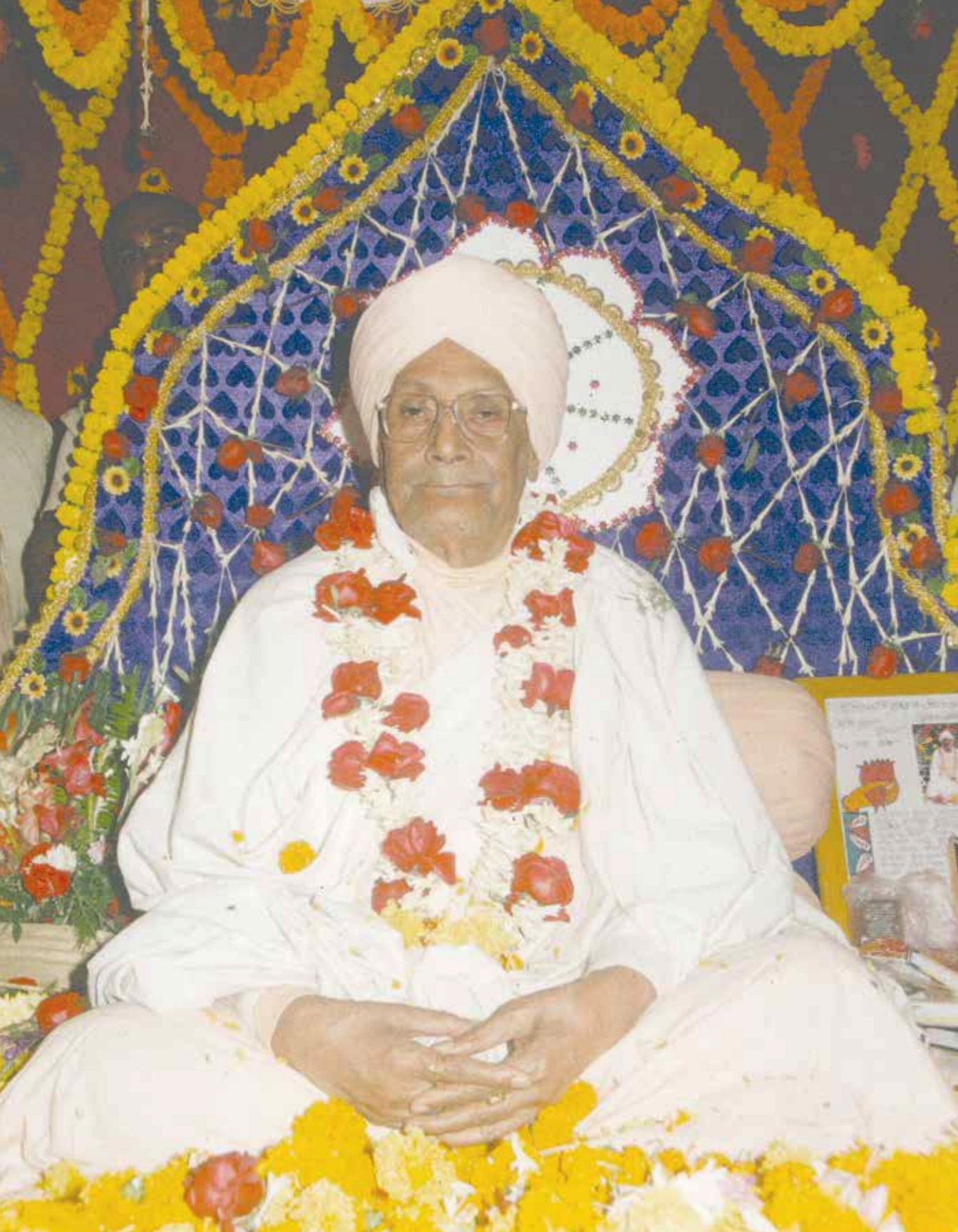

श्रीसारस्वत-गौड़ीय-वैष्णव एवं चरणाश्रितजनों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जलियोंसे उद्धृत अंश

श्रील वामन गोस्वामीकी महिमाका स्मरण

—श्रीराधाचरण दास बाबा, श्रीस्वरूपगञ्ज, नवद्वीप

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिर प्रतिष्ठाता।
भक्तिप्रज्ञान केशव जीवेर परित्राता॥
माधुर्यमय सेवा ताँर हृदयभ्यन्तरे।
सेइ प्रकाशिला ताँर शिष्य-प्रशिष्यरे॥
श्रीवामनादि शिष्य भक्तगणे दृढ़ कय।
समितिर सर्वत्र येन प्रेम-माधुर्य रय॥
सेइ गुरु! आदेश निर्देशे यत जन।
माधुर्यमय श्रीसेवा करेन पालन॥
जेइ माधुर्यमय सेवा हय अनर्गल।
सेइ माधुर्यमय सेवा अन्यत्र विरल॥

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता, जीवोंके उद्धारकर्त्ता श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके हृदयमें जो माधुर्यमयी सेवावृत्ति थी, उसे उन्होंने अपने शिष्य-प्रशिष्योंमें भी प्रकाशित किया। श्रीवामन गोस्वामी आदि अपने शिष्यों और भक्तोंको उन्होंने निर्देश दिया था कि समितिमें सर्वत्र प्रेम-माधुर्य सर्वदा रहे। अपने गुरुदेवके आदेश-निर्देशके अनुसार समितिके सभी जन माधुर्यमयी सेवाका अनुपालन करने लगे। समितिमें जिस प्रकार अबाध माधुर्यमयी सेवा चल रही है, वह अन्यत्र दिखायी नहीं देती।

श्रीवामन गोस्वामी प्रभुर निष्ठा-आचरण।
श्रीगुरुर चरण प्रान्ते करे विज्ञापन॥
निश्चय करिया कहिलाम सत्तस्य आमि।
एइ वाक्य पालन जेन हय मोर स्वामी॥
गुरु-वैष्णवेर आज्ञा धरिते युयाय।
श्रीगुरुवाक्य शिरे धरि दीन-हीने कय॥
पृथिवी यदि भासि' जाय काँदिते काँदिते।
तथापि बसिव आमि कर्त्तव्य साधिते॥

श्रीवामन गोस्वामी प्रभुका निष्ठापूर्ण आचरण ऐसा था कि—उन्होंने अपने श्रीगुरुदेवके चरणोंमें निवेदन किया कि वे निश्चय ही उनके इन वाक्योंका पालन करेंगे। गुरु-वैष्णवोंकी आज्ञा पालन करना ही शोभनीय है। श्रीगुरुके वाक्यको सिरपर धारणकर वे दीन-हीन होकर कहते थे—'पृथ्वीके सभी लोग यदि रोते-रोते बह भी जाएँ, फिर भी मैं अपना कर्त्तव्य साधन [गुरु-सेवा] करता रहूँगा।'

प्रभुपादेर रीति नीति ओ सेवा-आदर्श।
पालने एकनिष्ठ मन, दृढ़ व्रतादर्श॥
यावतीय सेवा करे हइया प्रेमाधीन।
सेवाकार्ये फाँकि ताँर नाहि कोन दिन॥
ताँहार सेवाकार्येर विचक्षणता बहुरूपि।
अतिसुन्दर पुष्पमाला ग्रथित-सेवानीति॥
त्रुटि याते नाहि हय तत्त्वसिद्धान्तेर।
तिलार्द्धेक नाहि त्रुटि सेवार भितर॥
जेइ सेवापूजा करे प्रेमरूपे जानि।
तार सेवा पूजा ग्रहण करे राधाठाकुराणी॥

श्रील प्रभुपादकी रीति, नीति और सेवादर्शका पालन करनेमें वे एकनिष्ठ और दृढ़व्रती थे। समस्त प्रकारकी सेवाओंको वे प्रीतिपूर्वक करते थे तथा सेवाकार्यकी कदापि उपेक्षा नहीं करते थे। बहुत प्रकारकी सेवाओंको करनेमें वे विचक्षण थे, उनकी सेवानीति अति सुन्दररूपसे ग्रथित पुष्पमालाके समान थी। उनके तत्त्व-सिद्धान्तोंके विचारोंमें कभी त्रुटि नहीं होती थी, न ही तिलार्ध त्रुटि उनके द्वारा सम्पादित किसी सेवामें ही होती थी। उनके द्वारा की जानेवाली समस्त सेवा-पूजा प्रेमरूप होनेके कारण उस सेवापूजाको श्रीराधा ठाकुरानी ग्रहण करती थीं।

कोचविहार जेला, बाबुर हाट स्थान।
वामन गोस्वामीर हरिकथा अनुष्ठान॥
वैशाख शेषभागे वृष्टि आरम्भ हय।
अनुष्ठान स्थान हैल जल-कर्दमाक्तमय॥
कादार मध्ये हरिकथा शुनिते सबाइ।
एक घण्टार वेशि समय हबे नाइ॥
कोचविहारेर यत धनि-मानि-पण्डित।
सकलेइ अनुष्ठाने हैल उपस्थित॥

पश्चिम बङ्गालके कोचविहार जिलेके अन्तर्गत बाबुरहाट नामक स्थानपर श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी हरिकथाका अनुष्ठान हो रहा था। वैशाख मास समाप्त होनेवाला था, उस समय वर्षा आरम्भ हो गयी और अनुष्ठानका स्थान पानी और कीचड़से भर गया। उस कीचड़में भी खड़े रहकर लगभग एक घण्टे तक सब लोगोंने हरिकथा श्रवण की। उस अनुष्ठानमें कोचविहारके जितने धनी, गणमान्य और पण्डित लोग थे, सभी उपस्थित हुए।

बाबुर हाटेर यतेक आछे पण्डित।
ताँरा गूढ़ प्रश्न लिखि हइल उपनीत॥
विभिन्न विषये प्रश्नेर यतेक लिपि।
दम्भ' करि दिल सबे हस्तलेखा कपि॥
तादेर उद्देश्ये श्रीवामन देव कय।
सब प्रश्नेर उत्तर एक घण्टाय नय॥
सभाय सबार प्रश्नेर एक एक करि।
सिद्धान्तपूर्ण उत्तर दिलेन भिन्न भिन्न करि॥
उत्तर दिलेन शास्त्रे तत्त्व-सिद्धान्त येथाय।
अमुक ग्रन्थे, एत अध्याये, एत पृष्ठाय॥
एत नं श्लोक देखुन आपने सबाइ।
ऐ ग्रन्थे युक्ति-तत्त्व-प्रमाण तो आछेइ॥
शुनि' 'वामन वचन' आश्चर्य हइल पण्डितगण।
जीवन्त अभिधान एइ श्रीवामन गोस्वामी हन॥
हेन सिद्धान्त तत्त्व कोथाओ नाहि शुनि।
सबार सन्देह दूर करिल श्रीवामन गोस्वामी॥

बाबुरहाटके जितने भी पण्डित थे, वे सभी अपने गूढ़ प्रश्नोंको लिखकर उपस्थित हुए। विभिन्न विषयों पर जितने भी प्रश्नोंको कागजपर लिखा था, दाम्भिकतापूर्वक उन्होंने उन सबको श्रीवामन गोस्वामी महाराजको दिया। तब श्रीवामन गोस्वामी महाराजने एक-एक करके उन समस्त प्रश्नोंके सिद्धान्तपूर्ण उत्तर एक घण्टेके भीतर ही सभामें दे दिये। शास्त्रोंमें ये सब तत्त्व-सिद्धान्त कौनसे ग्रन्थमें, किस अध्यायमें, कौनसे पृष्ठपर तथा श्लोक संख्या क्या है, यह सब बताते हुए उन लोगोंको वहाँ युक्तिसङ्गत तत्त्व-प्रमाण देखनेको कहा। 'श्रीवामन वचन' सुनकर सभी पण्डित आश्चर्यचकित रह गये तथा कहने लगे कि ये श्रीवामन गोस्वामी महाराज तो 'जीवन्त अभिधान (शब्दकोश) हैं।' ऐसा सिद्धान्त-तत्त्व अन्यत्र कहीं भी सुननेको नहीं मिला है। इस प्रकार श्रीवामन गोस्वामी महाराजने सभीके संशय दूर किये।

तथाकार एक विद्वान् पण्डित महाशय।
हाँटु समान जटा, शिवभक्त मनेते संशय॥
श्रीवामन गोस्वामीके देखि' सुख हय।
श्रेष्ठ वस्तु नाहि पाय बड़ दुःखे कय॥
उत्तम वस्तु लाभेर आशाय मोर मन।
प्रश्न लिखिया तेंह करिलेन निवेदन॥
श्रीवामन गोस्वामी शास्त्र सिद्धान्ते प्रवीण।
युक्ति-तत्त्वे जानाइल हइया तृणाधीन॥
यथार्थ उत्तर दिलेन, शास्त्रेर करिया प्रमाण।
गृहे गिया शास्त्र-समूह करुन अनुसन्धान॥

वहाँके एक पण्डित महाशयकी घुटने तक लम्बी जटा थी। वे शिवभक्त थे तथा उनके मनमें कई संशय थे। किन्तु वे श्रीवामन गोस्वामी महाराजको देखकर आनन्दित हुए। श्रेष्ठवस्तु [साधुसङ्ग]को न पानेके कारण वे बड़े दुःखी थे। 'मुझे उत्तम वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छा है'—इस प्रश्नको लिखकर उन्होंने श्रीवामन गोस्वामी महाराजके चरणोंमें निवेदन किया।

श्रीवामन गोस्वामी महाराज शास्त्र सिद्धान्तोंमें प्रवीण थे। उन्होंने तृणसे भी दीन-हीन भावसे युक्ति-तत्त्वोंके आधार पर शास्त्रोंसे प्रमाण देकर यथार्थ उत्तर दिया तथा उनसे कहा कि वे घर जाकर शास्त्रोंमें इसका अनुसन्धान करें।

जटाधारी शिवभक्त गृहे करिया गमन।
शास्त्र पड़ि' श्लोक देखि, चमकित मन॥
आजीवन शिव मन्त्र करिया साधन।
मन फिरि गेल तार लइल शरण॥
हे गुरुदेव! मोरे नाम-दीक्षा दाओ।
तव कृपा बले मुञि उद्धारिया जाओ॥
श्रीवामनदेव गोस्वामी शिवभक्ते कहेन।
मस्तक मुण्डिया एस, करिबे दीक्षा-ग्रहण॥
तेंह जटा छेदिया पड़िलेन श्रीगुरु पाय।
वामन गोस्वामी तारे नाम-दीक्षा देय॥
गुरु कहे तुमि जाह वृन्दावन धाम।
निष्कपटे कर सदा श्रीनाम-साधन॥
तबे गुरुदेव भक्ते आनन्दित मने।
श्रेष्ठ-सेवा-भक्ति दिया राखे वृन्दावने॥
तेंह वृन्दावने तीव्र करिया भजन।
सिद्धदेह लभिया नित्यधामे गमन॥

जटाधारी शिवभक्त घरमें गये, शास्त्र पढ़कर श्लोकोंको देखकर चौंक पड़े। आजीवन शिवमन्त्रका साधन करनेपर भी उनका मन बदल गया और उन्होंने श्रीवामन गोस्वामी महाराजकी शरण ली। उन्होंने श्रीवामन गोस्वामी महाराजके पास जाकर कहा—'हे गुरुदेव! आप मुझे नाम-दीक्षा दीजिए एवं कृपापूर्वक मेरा उद्धार कीजिए।' तब श्रीवामन गोस्वामी महाराजने उन शिवभक्तसे कहा—'जाओ, मस्तक मुण्डन करके आओ और दीक्षा ग्रहण करो।' तब वे जटाको काटकर श्रीगुरु—श्रीवामन गोस्वामी महाराजके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीवामन गोस्वामी महाराजने उनको नाम-दीक्षा दी और कहा—'तुम वृन्दावन धाम जाओ, वहाँ निष्कपट होकर सदा श्रीहरिनामका साधन करो।' तब वे भक्त आनन्दित हो गये कि गुरुदेवने उनको श्रीनाम-साधनरूपी श्रेष्ठ-सेवा—भक्ति देकर श्रीवृन्दावनमें वास दिया है। वे वृन्दावनमें जाकर तीव्र भजन करने लगे तथा अन्तमें सिद्धदेह प्राप्तकर नित्यधाममें चले गये।

शिलिगुड़ि श्रीश्यामसुन्दर मठ जे रय।
वामन गोस्वामी आगमने मठ आनन्दमय॥
योगमाया गोपेश्वर शिव आसिलेन।
श्रीवामन गोस्वामिके स्वप्ने कहिलेन॥
गोपेश्वर शिव आमि एइ त प्रयास।
एइ स्थाने कर मोर सेवा-पूजा प्रकाश॥
वैष्णव-श्रेष्ठ शिवठाकुर परम दयाल।
श्रीवामनेर सेवाय मठ हइल उज्ज्वल॥
तदवधि मठेर सेवक भक्तगण।
परमानन्दे शिवेर करये सेवन॥

श्रीवामन गोस्वामी महाराजके आगमनसे शिलिगुड़ि स्थित श्रीश्यामसुन्दर मठ आनन्दमय हो जाता था। वहींपर योगमाया और गोपेश्वर शिवने श्रीवामन गोस्वामी महाराजके स्वप्नमें आकर कहा—'मैं गोपेश्वर शिव हूँ। यहीं पर मेरी सेवा-पूजाको प्रकाशित करो।' वैष्णव-श्रेष्ठ शिव ठाकुर परम दयालु हैं। श्रीवामन गोस्वामी महाराजकी सेवा-पूजासे मठ उज्ज्वल हो गया। उसी दिनसे मठके सेवकगण परम आनन्दपूर्वक शिव ठाकुरकी सेवा करने लगे।

प्रभुपादगण हन श्रीश्रौती महाराज।
ताँहार गृही शिष्य हय गोसाञिदास॥
कार्यान्तरे टिकिया-पाड़ाय करेन वसवास।
साधुसङ्गे हरिकथा शुनिते प्रयास॥
श्रीवामन गोस्वामीर मुखे भागवत।
नित्य आसि' शुनिबेन एइ अभिमत॥
वामन गोस्वामीर मुखे भागवत शुनि'।

अतिशय आनन्द लाभ करिलेन तिनि॥
ताहार गृह निर्माणेर जन्य हइल बात।
अर्थ-कड़ि अनटने कार्य गेल बाद॥
वामन गोस्वामी महाराज हयेन दयालु।
गोविन्द महाराजके डाकि' किछु कहिलु॥
गृह निर्माणेर यत अर्थ करेछ निर्धारण।
गोविन्द महाराज द्वारा करेन बहन॥
ऐछे पर-उपकारी जगते विरल।
उभय उपकारार्थे कार्य करेन सफल॥

श्रील भक्तिभूदेव श्रौती महाराज श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुरके गण हैं। उनके गृहस्थ शिष्य हैं गोसाईं दास। वे कार्यवशतः टिकियापाड़ामें वास करते थे तथा सदा साधुसङ्गमें हरिकथा सुननेका प्रयास करते थे। उन्होंने विचार किया कि वे प्रतिदिन आकर श्रीवामन गोस्वामी महाराजके मुखसे भागवत सुनेंगे और इस प्रकार श्रीवामन गोस्वामी महाराजके मुखसे भागवत सुनकर वे बहुत आनन्द प्राप्त करते थे। वे अपना घर बनवाना चाहते थे, पर अर्थके अभावके कारण इस कार्यको कर नहीं पा रहे थे। परन्तु श्रीवामन गोस्वामी महाराजने दयापरवश होकर गोविन्द महाराजको बुलाकर कुछ कहा और गृह-निर्माणके लिए निर्धारित किये गये समस्त अर्थको गोविन्द महाराजके द्वारा वहन करवाया। ऐसे परोपकारी जगत्में विरले हैं, जो पारमार्थिक तथा जागतिक दोनों कार्योंको सफल करते थे।

निमाइ तीर्थ घाटे श्रीगौड़ीय मठ निर्माण।
पूर्व हइते तथाय छिल नाग बाबार स्थान॥
वृहत् काय हय तार अति क्रोधासन।
सविनये करजोड़े कहेन श्रीवामन॥
ओहे नागबाबा तुमि अति भयङ्कर।
तोमा' देखि' भक्तगण पाय बड़ डर॥
तुमि यदि नाहि जाओ एइ स्थान हइते।
तबे मोर वाक्य मिथ्या हय सर्वजगते॥
अतएव तोमाय निवेदन करि आर बार।
दया करि स्थान छाड़ि' जाओ गङ्गा पार॥
श्रीवामन गोस्वामी परमभक्त श्रीराधिकार।
नागबाबा चलि गेला गङ्गार ओपार॥
श्रीवामनेर कथा शुने सर्व प्राणीगण।
दुःख गेल भक्तगणेर आनन्दित मन॥

जब निमाई तीर्थ घाट पर श्रीगौड़ीय मठका निर्माण हो रहा था तो पहलेसे ही वहाँ पर एक नाग सर्पका अवस्थान था। वह सर्प बहुत बड़ा था और अति क्रोधीरूपमें प्रतीत होता था। श्रीवामन गोस्वामी महाराजने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उससे कहा कि,—'हे नागबाबा! आप अति भयङ्कर हैं, आपको देखकर भक्तोंको बड़ा डर लगता है। आप यदि इस स्थानसे नहीं जाते तो जगत्में मेरे वचन मिथ्या हो जायेंगे। अतः आपसे बार-बार निवेदन करता हूँ कि आप दया करके इस स्थानको छोड़कर गङ्गाके दूसरे तटपर चले जाएँ।' तब वह नागसर्प गङ्गाके उस पार चला गया। इससे सभी भक्तोंका दुःख दूर हुआ और वे आनन्दित हो गये। श्रीवामन गोस्वामी महाराज श्रीराधिकाके परम-भक्त हैं, उनकी बात समस्त प्राणी मानते थे।

श्रीवामन गोस्वामी सेवकके कहेन कथा।
पुष्प उद्यानेर द्वार मुक्त राखिबे सर्वदा॥
निशान्ते वामन गोस्वामी जान उद्याने।
राधा-विनोदेर सेवा करेन सखी सने॥
राधा विनोदेर लीला नित्यकाल ये हय।
प्रकटे किबा अप्रकटे भक्त लीलार सहाय॥

श्रीवामन गोस्वामी महाराजने अपने सेवकोंको कह रखा था कि वे पुष्प उद्यानके द्वारको सदा खुला रखेंगे। श्रीवामन गोस्वामी महाराज निशान्त समयमें पुष्प उद्यानमें जाते थे और सखियोंके साथ श्रीराधा-विनोदविहारीकी सेवा करते थे।

श्रीराधा-विनोदविहारीकी लीला नित्यकाल होती है, प्रकट या अप्रकट दोनों अवस्थाओंमें भक्त लीलाके सहायक होते हैं।

श्रीवामन गोस्वामी जे रूप भक्तिमान्।
ताँर भक्त-शिष्ये ताहा हय पर्यवसन॥
श्रीवामन गोस्वामीर श्रीचरणाश्रित जन।
निष्ठा-भक्ति-भगवाने गुरुगत मन॥
श्रीवामन गोस्वामीर जत आदेश-निर्देश।
मम गुरुभ्रातागणेर सेवा करिबे विशेष॥
श्रीवामन गोस्वामीर शिष्यगण शान्त-धीर।
श्रीगुरु आनुगत्ये सेवाय हैल स्थिर॥
श्रीकेशव गोस्वामीर शिष्य आछे जत।
कायमनवाक्ये ताँहार सेवाय रत॥
ताँरा असुस्थाभिनय करेन जखन।
मल-मूत्र धौत करिते अकुण्ठ मन॥
सकलेइ सेवाकार्ये तत्पर रय।
मायुर्यमय सेवा, जाते सबे सुख पाय॥
समितिर समृद्धि-उज्ज्वल हय रीते।
सबे मिलि सेवा-सङ्कीर्तन करेन भालमते॥
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिर श्रीमान्।
सर्वभावे चेष्टा साधु-वैष्णवे सम्मान॥
सेइसब ब्रह्मचारी यथा तथा रय।
सर्वत्यागी करे सबे सन्यास आश्रय॥
श्रीकेशव गोस्वामीर शिष्य तिन जन।
श्रीवामन, श्रीत्रिविक्रम आर श्रीनारायण॥
तिन सतीर्थेर अति गाढ़ सम्बन्ध हय।
गुरु-गौराङ्ग सेवने सब तत्पर रय॥
गौर कृष्ण भक्तेर लीला निगूढ़ पाथार।
ऐ तिनेर लीला बद्धजीवेर बुझा भार॥
गौड़-ब्रजे भक्त-भगवाने प्रेम-कन्दल।
बुझिबे रसिक भक्त अरसिक शुधु-क्रन्दन॥

श्रीवामनादि भ्रातृत्रये बद्ध एक मन।
ए तिन जने विच्छेद नहे त कखन॥

इन तीनों गुरुभ्राताओंका एक ही मन था तथा इन तीनोंमें कभी विच्छेद नहीं है।

श्रीवामन गोस्वामी महाराज जिस प्रकार भक्तिमान् हैं, वैसी भक्ति उनके भक्तों और शिष्योंमें पर्यवसित होते देखी जाती है। उनके चरणाश्रित जनोंमें भगवान्‌के प्रति निष्ठा और भक्ति है तथा वे गुरुगत-प्राण हैं। श्रीवामन गोस्वामी महाराजने अपने शिष्योंको आदेश दिया था—'मेरे गुरुभ्राताओंकी विशेष रूपसे सेवा करना।' उनके शान्त और धीर शिष्यगण श्रीगुरुके आनुगत्यमें अपनी-अपनी सेवाओंमें स्थिर हुए तथा अपने गुरुदेवके आदेशानुसार श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके समस्त शिष्योंकी काय-मन-वाक्यसे सेवा की। उन लोगोंके अस्वस्थ लीला करने पर इन्होंने उनके मल-मूत्र आदिको धोनेमें कोई संकोच नहीं किया। सभी सेवाकार्योंमें तत्पर रहते तथा माधुर्यमयी सेवाओंको सम्पादन कर बड़े सुखका अनुभव करते। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिको अधिक उज्ज्वल और समृद्ध करनेके लिए वे सब मिलजुलकर भलीभाँति सेवा और सङ्कीर्तन करते थे। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी 'श्री' रक्षाके लिए वे साधु और वैष्णवोंको सब प्रकारसे सम्मान किया करते। वे सब ब्रह्मचारी जहाँ कहीं भी हों, सबने सर्वस्व त्याग करते हुए संन्यास ग्रहण किया। श्रीकेशव गोस्वामीके तीन प्रमुख शिष्य थे—श्रीवामन, श्रीत्रिविक्रम और श्रीनारायण। इन तीनों सतीर्थों (गुरुभ्राताओं) में अत्यन्त प्रगाढ़ सम्बन्ध था और गुरु-गौराङ्गकी सेवामें तीनों तत्पर रहते थे। गौर-कृष्ण-भक्तोंकी लीलाएँ अत्यन्त गोपनीय हैं, अतः इन तीनोंकी लीलाओंको समझना बद्ध जीवोंके लिए कठिन है। गौड़मण्डल और ब्रजमण्डलमें भक्त और भगवान्‌के मध्य जो प्रेम-कलह होता है, उसे रसिक भक्त लोग ही समझ सकते हैं, अरसिक लोग उसे न समझ पानेके कारण केवल रोते ही रहेंगे।

नवद्वीप-धाम माहात्म्य स्मरण-कीर्तन।
श्रवणे-वर्णने जाँहार मन-प्राण॥
श्रीनवद्वीप प्रति अतिशय भक्ति।
नित्यकाल जेन हय एइ धामे स्थिति॥
स्थूल-सूक्ष्म शरीरेर छाड़िया अभिमान।
नित्य चित् शरीरे हय ताँर अधिष्ठान॥
श्रीवामन गोस्वामी कृष्ण-भजने चतुर।
चित्-स्वरूपे युगल-भजन करेन प्रचुर॥
धन्य एइ कलियुगे नवद्वीपधाम अतिशय।
नवद्वीपे शरीर त्याग करिमु निश्चय॥
श्रीवामन गोस्वामी ये करियाछेन मनस्थिर।
श्रीदामोदर व्रते नवद्वीपे स्थान गङ्गातीर॥
अष्टकालीय लीला मध्ये सप्तम हय।
निकुञ्जवने रम्ये मध्यरात्रि समय॥
सेइ लीला स्मरिया गोस्वामी वामन।
मध्यरात्रि लीला लागि करिला गमन॥
रात्रि लीला कृष्णेर श्रीराधा-सखीसने।
उन्नतोज्ज्वल रास लीला आस्वादने॥

श्रीनवद्वीप-धामकी महिमाका स्मरण, कीर्तन, श्रवण और वर्णन करनेमें जिनका मन-प्राण लगा हुआ है, श्रीनवद्वीप-धामके प्रति जिनमें अतिशय भक्ति है, नित्यकाल ही जिनकी उस धाममें स्थिति(वास) है, स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अभिमान छोड़कर नित्य चित् शरीरमें जिनका अधिष्ठान है, वे श्रीवामन गोस्वामी महाराज कृष्णभजनमें चतुर हैं और अपने चित्-स्वरूपमें प्रचुर युगल-भजन करते हैं। इस धन्य कलियुगमें श्रीनवद्वीप-धाम अत्यन्त महिमान्वित है, 'मैं निश्चय ही यहीं पर अपना शरीर त्याग करूँगा'—श्रीवामन गोस्वामी महाराजने मनमें ऐसा स्थिर किया था। वे श्रीदामोदर-व्रतके समय गङ्गातट

पर स्थित श्रीनवद्वीप-धाममें, रम्य निकुञ्जवनमें अष्टकालीय लीलाओंमें सप्तम मध्यरात्रि-लीलाका स्मरण करते हुए, श्रीश्रीराधाकृष्णकी उस मध्यरात्रि—नैश-लीलामें श्रीकृष्णके श्रीराधा और सखियोंके साथ उन्नत-उज्जवल रासलीलाके सेवासुख-आस्वादनके लिए प्रवेश कर गये।

श्रीवामन गोस्वामी तव भक्त-शिष्यजन।
बहुरूपे तव गुणगान करियाछेन वर्णन॥
मुञि क्षुद्र जीवाधम, ज्ञान-बुद्धि नाइ।
आपनार गुण वर्णिते मोर साध्य नाइ॥
श्रीचरणे प्रणति जानिये कृपाभिक्षा मागि।
ए' अधम पामरे भव-पार कर केशे धरि॥
श्रीवामन गोस्वामी प्रभुर महिमा सिन्धु।
तव कृपा बले गुण गाइ एक बिन्दु॥
हे वामन गोस्वामी प्रभु (यदि) तव कृपा हय।
नित्यकाल देह मोरे तव श्रीचरणे आश्रय॥

हे श्रीवामन गोस्वामी महाराज! आपके भक्तों और शिष्योंने बहुत प्रकारसे आपका गुणगान किया है। मैं एक तुच्छ-अधम जीव हूँ, मुझमें ज्ञान-बुद्धि नहीं है और न ही आपके गुणोंका वर्णन करनेके लिए मुझमें क्षमता है। इसलिए आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हुए आपसे कृपा भिक्षा माँगता हूँ कि आप इस अधम पतितके केशोंको पकड़कर भवसागरसे पार कराएँ। हे प्रभु! आपकी महिमा सागरके समान है, आपकी कृपासे ही आपकी महिमा-सागरके एक बिन्दुका गान कर रहा हूँ। यदि आप मुझपर कृपा करना चाहते हैं तो मुझे अपने श्रीचरणोंमें नित्यकालके लिए आश्रय प्रदान करें।

नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका शतवार्षिकी-व्यासपूजा महोत्सव

—श्रीमद्भक्तिविचार विष्णु महाराज, मायापुर

सन् १९८५ई. में मैं अपने शिक्षागुरु पूज्यपाद श्रीनित्यानन्द ब्रह्मचारी प्रभु एवं संन्यास गुरु प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजके साथ श्रीभक्तिविनोद आश्रम, ब्रह्मपुर, उड़ीसासे खड़गपुर होकर श्रीनवद्वीप-धाम दर्शनके लिए गया था। उस समय श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें परम पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके प्रथम दर्शनमें उनकी असाधारण वैष्णवीय गुणावलीका दर्शनकर मैं धन्य हुआ था।

श्रील वामन गोस्वामी महाराज श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदायके एक महान् आचार्य थे। प्रतिदिन वे निर्बन्धपूर्वक अपने भजन-साधनकी रक्षा करते थे। व्यक्तिगत साधनके अतिरिक्त वे प्रत्यह अन्यान्यको शास्त्रोंकी सार-शिक्षा प्रदान करते थे। वे नियमित रूपसे दक्षतापूर्वक विभिन्न श्लोकों तथा तत्त्वसिद्धान्तोंकी नाना दृष्टिकोणोंसे व्याख्या करते थे। एक आदर्श आचार्यके अनुसार वे अपने अनुगामियोंको अपने व्यक्तिगत जीवनके वास्तव उदाहरणोंके द्वारा पवित्रताकी रक्षा करनेकी शिक्षा दिया करते थे। वे सद्गुरुके समस्त अप्राकृत गुणोंसे विभूषित थे। जीवनके अन्तिम श्वास तक वे आचार-प्रचार करते गये। अपने श्रीगुरुदेवके

प्रतिष्ठानके सभापति-आचार्यके रूपमें उन्होंने पूर्ण एवं विश्वस्त दायित्व ग्रहणकर अपने श्रीगुरुदेवका मनोऽभीष्ट पूर्ण किया।

श्रील वामन गोस्वामी महाराजने गौड़ीय सिद्धान्तोंके उच्च आदर्शोंके प्रति सभीको आकृष्ट किया एवं आध्यात्मिक उन्नतिके लिए उन्हें कर्तव्य-अकर्तव्यके विषयमें अवगत कराया। उन्होंने बहुतसे गोस्वामी ग्रन्थोंको तथा श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी शिक्षाओंको प्रकाशित किया। वे गौड़ीय-वैष्णव-सिद्धान्तोंकी समस्त समस्याओंके युक्तिपूर्ण सामञ्जस्य तथा समाधानमें दक्ष थे। उनकी लेखनी सर्वदा ही श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षाओंके सार-सौरभको दूसरोंके हृदयमें प्रतिष्ठित करनेमें तत्पर रहती थी।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके साथ मेरे संन्यास गुरु श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजका सर्वदा ही घनिष्ठ एवं विशेष सम्पर्क था। सन् १९९४ ई॰ में श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजने जब अप्रकटलीला प्रकाश की, उस समय श्रील वामन गास्वामी महाराज मद्रासमें चिकित्साके लिए गये थे। श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजके अप्रकट होनेका संवाद पाते ही अतिशीघ्र उन्होंने अपनी चिकित्सा स्थगित कर दी तथा वहाँसे सीधे सुभाषपल्ली, खड़गपुर स्थित गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए एवं व्यक्तिगत रूपसे अपने दायित्वमें अपनी समितिसे बहुतसे वैष्णवोंको बुलाकर विशाल उत्सवका आयोजन किया। उन्होंने अपने हाथोंसे श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजका समाधि-अनुष्ठान भी किया। उनका वैष्णव-सेवाका गम्भीर आग्रह तथा उत्साह देखकर मैं स्वयंको अति सौभाग्यवान् मानता हूँ।

एकबार श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उनकी भजनकुटीमें मैं उनके साथ अकेला ही बैठा था। मैंने अति विनीत भावसे उनसे जिज्ञासा की—"महाराज!

मठ-मन्दिरमें निवास करनेवाला एक मठवासी किस प्रकारसे शुद्धभक्तिका अनुशीलन कर सकता है? मठ-मन्दिरोंमें प्रायः विभिन्न समस्याएँ तथा वाद-विवाद चलते रहते हैं। गौड़ीय मठके इतिहासके विषयमें चर्चा करनेपर हम लोग बहुत-सी समस्याओंके विषयमें जान पाते हैं। इस प्रकार समस्याओंके बीचमें रहकर भी एक व्यक्ति किस प्रकारसे सुष्ठुरूपसे शुद्धभक्तिका याजन तथा भावभक्तिसे प्रेमभक्ति प्राप्त कर सकता है?" मेरे प्रश्नको मनोयोगपूर्वक श्रवण करनेके बाद श्रील महाराज कुछ क्षण चुप रहनेके बाद बोले—"श्रीचैतन्य महाप्रभुने शिक्षाष्टकके तृतीय श्लोकमें निर्देश दिया है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

हमें प्रतिदिन एवं प्रति पगपर इसका ही अनुशीलन करना होगा। मैं स्वयं अभी भी इसका इसी प्रकारसे अनुशीलन करता हूँ। पूर्व दिनके भात (अन्न)में रातभर जल देनेपर वह पान्ता-भात कहलाता है, जो बिल्कुल भी गरम नहीं होता, अपितु ठण्डा होता है, किन्तु मैं उसे भी गरम अनुभव करता हूँ, ठीक इसी प्रकार।" बादमें श्रील महाराज बङ्गलामें मुझे इसका तात्पर्य समझाते हुए बोले—"मैं पान्ता-भातको भी फूँक मारकर खाता हूँ।" मैं उस समय उनके कहनेका तात्पर्य समझ नहीं पाया था, किन्तु बादमें उसका गम्भीर अर्थ समझ पाया। उनके समान एक महान् वैष्णव-आचार्यके श्रीमुखसे अमृतकी भाँति उपदेश निकलते रहते थे। उनके ऐसे निर्देश केवल श्रवणमात्रसे ही सहज बोधगम्य नहीं थे। श्रील महाराजकी ऐसी गम्भीर उपलब्धि थी कि वे सर्वदा ही संक्षेपमें शास्त्रोंका गूढ़ तात्पर्य, वास्तव सत्य तथा शास्त्रीय सिद्धान्तोंके सारको सहज-सरल सुमधुर भावोंसे प्रकाशित करते थे।

कलियुगका धर्म है—'श्रीकृष्णनाम सङ्कीर्तन'। हमारा मूल मन्त्र है "परं विजयते श्रीकृष्णनामसङ्कीर्तन।" किन्तु ऐसे महान् वैष्णवोंकी साक्षात् उपस्थिति तथा कृपाके बिना वर्तमान कलियुगमें प्रचार करना भी अत्यन्त दुष्कर कार्य है। वर्तमानमें महान् आचार्योंके जगत्को छोड़कर जानेके बाद यह जगत् पापपूर्ण अन्धकारमय राज्यमें परिणत हो रहा है। बादमें कलिकी प्रबलताके कारण स्थिति और भी भयावह हो जायेगी। फिर भी यदि हम श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके समान शुद्धवैष्णव-आचार्योंका सर्वदा स्मरण करेंगे तथा पदाङ्कानुसरण करेंगे तो पारमार्थिक उन्नतिकी प्रचुर आशा बनी रहेगी। वे अपने नित्यधामसे हमारे ऊपर कृपावर्षण करते रहें—यही मेरी प्रार्थना है।

श्रीश्रील गुरुदेवके अभयचरणारविन्दोंमें श्रद्धार्घ्य

—श्रीभक्तिवेदान्त पुरी महाराज (नवद्वीप)

अस्मदीय श्रीगुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज सौ वर्ष पूर्व ८ पौष, १३२८ बङ्गाब्द (ईस्वी सन् २३/१२/१९२१) शुक्रवार कृष्णपक्ष नवमी तिथि पर पूर्वबङ्ग (वर्तमान बांग्लादेश)के खुलना जिला (वर्तमान बागेरहाट जिला)के अन्तर्गत पिलजङ्ग गाँवमें एक संभ्रान्त वैष्णव परिवारमें पिता श्रीसतीशचन्द्र घोष और माता भगवती देवीके गृहमें प्रकट हुए थे। उनकी माताजी प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी चरणाश्रिता और वैष्णव-सेवा परायणा थीं। उनके पिताजी मदीय परमगुरुदेव श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुगृहीत 'श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी' नामसे वैष्णवोंके प्रियपात्र थे। सभी वैष्णव उनको बहुत स्नेह-आदर करते थे। मेरे गुरु-महाराज बचपनसे ही धीर-स्थिर, शान्त और लज्जाशील थे। अभिमान करने पर उनको मनाना सहज नहीं होता था।

मठमें आनेपर वैष्णवसेवा ही उनका प्राण था। उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर वैष्णवगण उनको प्रचुर आशीर्वाद करते थे। गुरु-महाराज कहते थे—'मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है, वह गुरु-वैष्णवोंके आशीर्वादसे ही किया है।' विद्यालयमें भी अद्भुत मेधाके कारण वे डबल प्रमोशन पाते थे। अप्रकटसे कुछ माह पूर्व श्रील प्रभुपादने उनको हरिनाम प्रदान किया था।

गुरु-महाराज परमगुरुदेवके गणेश थे अर्थात् समस्त पत्र-प्रबन्धादि एक ही बारमें निर्भूल लिखते थे, संशोधनकी कोई आवश्यकता नहीं होती थी।

सन् १९५२में परमगुरुदेवने श्रील गुरुमहाराज, श्रील त्रिविक्रम महाराज और श्रील नारायण महाराजको एक साथ त्रिदण्ड संन्यास प्रदान करते हुए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भ, प्रचारकार्य और सम्प्रदायके संरक्षणके लिए तीन सेनापति तथा सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनके आदर्शस्वरूप त्रिरत्नको प्रकाशकर जगत्का अशेष कल्याण किया। उन तीनोंमें अन्यतम थे गुरुपादपद्म श्रीवामन गोस्वामी ठाकुर।

'*गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया*' शास्त्र-वाक्यके अनुसार गुरु-महाराज अपने गुरुदेवके अप्रकटके उपरान्त श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति-आचार्य पदपर अभिषिक्त हुए एवं दीर्घ ३६ वर्षों तक आचार्य और सभापति पद पर आसीन रहे। सह-सभापति श्रील नारायण गोस्वामी महाराज तथा साधारण-सम्पादक श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज समतिके प्रगतिमूलक कार्योंमें पूर्ण सहयोग करते रहे। वे पूरे साल समुद्रसे हिमालय तक अर्थात् बङ्गाल, बिहार, ओड़िशा, झाड़खण्ड, असम, नागालैण्ड, मणिपुर और मेघालय आदि राज्योंके प्रत्येक गाँव, शहर, घर, बाजारमें सर्वत्र सभा-समिति, नगर-परिक्रमा, हरिकथा आदिके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका परिवेशन करते थे। विशेषकर सुन्दरवनके ग्राम-ग्राममें दीन-दरिद्रके घरमें अवस्थान करते हुए अपने खर्चेसे उत्सव आदि अनुष्ठान और हरिकथाका प्रचार आदि करते थे। '*साधवो दीनवत्सलाः*'—दीन दयामय गुरु-महाराज अभिमानी धनीसे अधिक दीन-दरिद्रके घर जाना पसन्द करते थे। किसीको वचन दे देनेपर आँधी-तूफान आदिकी हजार बाधाओंको पारकर पैदल उसके घर पहुँच जाते थे। प्रत्यह ३-४ घण्टे पाठ, कीर्तन, वक्तृता एवं भक्तोंके साथ हरिकथापूर्ण वार्तालाप आदिसे प्रचार करते थे। उन्होंने परमगुरुदेवके द्वारा प्रतिष्ठित मठोंका संरक्षण और विकास किया तथा प्रायः २० नये मठोंको स्थापन किया।

गुरु-महाराजकी तत्त्वसिद्धान्तपूर्ण हरिकथासे आकर्षित होकर बहुत युवक संसार परित्यागकर उनके चरणोंका आश्रयकर ब्रह्मचारी या संन्यास वेशमें भजन कर रहे हैं तथा उनके आदर्शका अनुसरण करते हुए हरिकथाका प्रचार कर रहे हैं। वे भक्तवत्सल, गुरुभ्रातावत्सल, सेवकवत्सल एवं शिष्यवत्सल थे। '*मर्यादा लंघन प्रभु सहिते ना पारे।* विशेषतः वे अपने गुरुभ्राता और वैष्णवोंका असम्मान कदापि सहन नहीं करते थे, कभी-कभी आवश्यकता होनेपर अपने शिष्यका परित्याग कर देनेमें भी संकोच नहीं करते थे। सभीको इस विषयमें सावधान करते हुए वे कहते थे—'मैं तो पान्ता (पानी-भात)को भी फूँक मारकर खाता हूँ।'

सरलता ही वैष्णवता है। वैष्णवके आनुगत्य और दायित्त्वपूर्ण सेवाके बिना हरि-गुरु-वैष्णव कदापि प्रसन्न नहीं होते। इन तीनोंमें किसी एकको त्यागकर हम किसी अन्यको प्रसन्न नहीं कर सकते। हम तीनों तत्त्वके पुजारी हैं। समस्त गुरुभ्राता गुरु-महाराजके आनुगत्यमें, सान्निध्यमें निश्चिन्त होकर भजन-साधन करते थे। वे गोपन रूपसे अपने गुरुभ्राता और वैष्णवोंकी चिकित्सा आदिका व्यय वहन करते तथा सेवा-शुश्रूषा आदि करते थे। इसलिए उन लोगोंको उनके गुरुदेव श्रील केशव गोस्वामी महाराजका अभाव अनुभव नहीं होता था। वे कदापि वैष्णव-निन्दा, परनिन्दा और पर-चर्चा नहीं करते थे, किसीको भी कठोर रूपसे शासन नहीं करते थे।

प्रसाद कैसा हुआ है, पूछने पर वे मौन रहते थे अथवा कहते थे—'मैं तो प्रसाद सेवा कर रहा हूँ, दाल-भात नहीं। *भाल-मन्द नाहि जानि सेवा-मात्र करि।* महाप्रसाद भगवान्‌का अधरामृत है।'

मठमें हरिकथाके समय गुरु-महाराज वैष्णवोंको प्रचुर हरिकथा बोलनेके लिए देते थे एवं अन्तमें '*मितञ्च सारञ्च*'—समस्त सिद्धान्तोंका सारसंक्षेप '*मधुरेण समापयेत्*' अर्थात् मधुर रूपमें वर्णन करते थे। कभी सभामें कृष्णपक्ष या राधापक्षकी श्रेष्ठताको लेकर वितर्क होनेपर वे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी गीतिका गान करते थे—

राधापक्ष छाड़ि', जे-जन से-जन,
जे-भावे से-भावे थाके।
आमि त' राधिका-,पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताँके॥

श्रील गुरु-महाराजका श्रीअङ्ग कुसुमसे भी कोमल, तप्तकाञ्चन वर्ण, आजानुलम्बित बाहु, दीर्घ शरीर था। वे शिशुके समान सरल थे, सौम्य, शान्त, स्निग्ध, गम्भीर, अत्यन्त संकोची स्वभावके और सदा प्रफुल्लित रहते थे। वे समकालीन गौड़ीय आचार-प्रचारशील

आचार्यगणोंमें अन्यतम उज्ज्वल नक्षत्रस्वरूप मठाचार्य थे। वे अत्यन्त विनम्र, सहज-सरल और वैराग्यपूर्ण जीवनमें अभ्यस्त थे। अपने लिए किसीको भी उद्वेग नहीं देते थे। यहाँ तक कि अस्वस्थ लीलाके समय भी सेवकको कष्ट नहीं देते थे। रातमें सेवकको न बुलाकर स्वयं कष्ट सहन करते एवं सभीको कहते 'मैं ठीक हूँ।' '*जीवन निर्वाहि आने उद्वेग ना दिबे। पर-उपकारे निज सुख पासरिबे॥*[अर्थात् अपने जीवन निर्वाहके लिए दूसरोंको उद्वेग नहीं देना और पर-उपकारके लिए अपने सुखको भी त्याग देना।]'—यह उनके जीवनका व्रत था। उनके नामसे कोई बैंक खाता नहीं था, वे कदापि सञ्चय नहीं करते थे, कुर्तेकी जेब ही उनका बैंक था। वे अपनी व्यासपूजा करने नहीं देते थे, आविर्भाव तिथिके पूर्व दिन ही अज्ञातवासमें चले जाते थे।

परमगुरुदेव श्रील केशव गोस्वामी महाराजने अपने कोमल हृदयसे गुरु-महाराज श्रील वामन गोस्वामी, उदार मनसे श्रील नारायण गोस्वामी एवं वज्रके समान कठोरतासे श्रील त्रिविक्रम गोस्वामी—इन त्रिरत्नोंको प्रकाशित किया है।

मैं बचपनमें मठमें आ गया। 'सारा जीवन मठवास करना किस प्रकार सम्भव है?' मेरे इस बालसुलभ प्रश्नके उत्तरमें गुरु-महाराज अत्यन्त सहज सरल रूपसे कहते थे—'वैष्णवेर गाल (गाली) आर जल जल दाल (पतली दाल)', 'गुरु-वैष्णवका आनुगत्य ही मठवासीका कर्त्तव्य है', 'सरलता ही वैष्णवता है', 'अन्तर बाहरमें सम व्यवहार', 'जो सहे वही रहे'। वे कहते थे—'कु' बोलना मत, 'कु' सुनना मत, 'कु' देखना मत' अर्थात् 'देखना, सुनना, पर कुछ मत बोलना। बातको हजम करना सीखना होगा।' 'जिसको साधारण ज्ञान नहीं है, वह तत्त्वज्ञान भी नहीं जान सकता।' 'गुरुका सेवक मेरा सम्माननीय है।' 'किसी की निन्दा न कर कृष्ण कृष्ण बोलना चाहिए।' 'दुष्ट मवेशीसे शून्य गोष्ठ अच्छा है।' 'किसीको कदापि उद्वेग नहीं देना चाहिए, किसीसे कुछ उपकार पाने पर उसका आभारी रहना, उसका प्रत्युपकार न कर पाने पर भी कदापि अपकार मत करना।' 'मनुष्य स्नेह-प्रीतिका भिखारी है, घरसे अधिक स्नेह-प्रीति पाने पर मठवास सम्भव होता है।' 'भिक्षाकी वस्तुमें विष है, गुरुसेवाके अलावा उसे कदापि अपने भोगमें मत लगाना।' 'भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे', 'दाँत रहते दाँतकी मर्यादा समझ नहीं सकते।' 'गुरु अनेक मिलते हैं, पर शिष्य एक ही मिलता है। शिष्य अर्थात् जो गुरुदेवका शासन और सम्पूर्ण आनुगत्य स्वीकार करता है, वही वास्तव शिष्य पदवाच्य है।' 'सत्-शिष्य ही सद्गुरु होनेकी योग्यता रखता है।' 'शास्त्रका अर्थ है शासन-वाणी, शास्त्रके समस्त उपदेश केवल मेरे कल्याणके लिए ही हैं, अन्यको उपदेश देनेके लिए नहीं।' 'दूसरोंकी आलोचनासे अच्छा है आत्म-समालोचना।' 'जो दायित्व लेकर सेवा-कार्य करता है, उसकी आलोचना होती ही है।' 'श्रौत-मार्गमें गुरु-वैष्णवके मुखसे जो भलीभाँति श्रवण करते हैं, वे ही कीर्तनके अधिकारी हैं।' 'हम सभी गुरु-वैष्णवोंके उच्छिष्ट-भोजी सेवक हैं।' इत्यादि।

एक बार मैंने गुरु-महाराजसे प्रश्न किया था—क्या गुरुदेवकी आरतीके समय मोरपंख व्यवहार कर सकते हैं?

इसके उत्तरमें श्रील गुरु-महाराजने कहा—'शिखिपिञ्छमौलि अर्थात् मोरपंख कृष्णको अत्यन्त प्रिय है। यह केवल श्रीकृष्णके लिए ही व्यवहृत होगा। अन्य किसीकी आरतीके समय इसका व्यवहार करना उचित नहीं है।' हे गुरुदेव—

'योग्यता विचारे किछु नाहि पाइ,
तोमार करुणा सार।
करुणा ना हैले काँदिया काँदिया,
प्राण ना राखिब आर॥'

जय गुरुदेव! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्रीगुरुपादपद्मकी शततम शुभाविर्भाव-तिथिके अवसरपर दीनकी भक्ति-पुष्पाञ्जलि

—श्रीभक्तिवेदान्त निरीह महाराज
(श्रीनिमाइतीर्थ गौड़ीय मठ, वैद्यवाटी, हुगली)

स्वरवर्ण-मालामें श्रीगुरु-महिमा

अ— अनन्त अभिन्न श्रीगुरुदेव आमार।
आ— आश्रय करिया वन्दि चरण ताँहार॥ १॥
इ— इष्टदेव हओ मोर वाञ्छाकल्पतरु।
ई— ईश्वरेर भक्तिदाता जगत्पूज्य गुरु॥ २॥
उ— उत्तम अपूर्वतत्त्व शिक्षा करि दान।
ऊ— ऊन् जीवेर दुःख हेरि दिले कृष्णनाम॥ ३॥
ऋ— ऋणग्रस्त जीव-प्रति हइया सदय।
ॠ— रीतिमत कृष्णनामे कराइल आश्रय॥ ४॥
ऌ— लिप्ताङ्ग श्रीगौरप्रेमे गौर शशधर।
ॡ— लीला-प्रकाशक सेइ गुरुदेव आमार॥ ५॥
ए— एहेन श्रीगुरुपदे ना जन्मिल रति।
ऐ— ऐहिक विषय भोगे सदा बाड़े मति॥ ६॥
ओ— ओहे गुरुदेव! तुमि पतित पावन।
औ— औषध श्रीहरिनाम मोरे कर दान॥ ७॥
अज्ञानतिमिरान्धे अनादिकाल आमि।
पड़े आछि भवार्णवे त्राण कर तुमि॥ ८॥
भगवत्तत्त्वे चक्षुरुन्मीलित कर आमार।
तव पदे नति आमि करि बार बार॥ ९॥
ए चतुर्दश स्वरावली ये करे गान।
श्रीगुरु-कृपापात्र सेइ भाग्यवान्॥ १०॥

व्यञ्जन-वर्णमालामें श्रीगुरु-महिमा

क— कृष्णेर प्रकाश श्रीगुरुदेव आमार।
ख— खेयाघाटे माझि हये जीवे करे पार॥ १॥
ग— गुरुर चरण तरी करिया भरसा।
घ— घाटे आछि वसि आमि पार हब आशा॥ २॥
ङ— उच्च अभिलाष मने हब आमि पार।
च— चित्त मोर रिपुवशे हइल छारखार॥ ३॥
छ— छट-पट करे मन ना देखि काण्डारी।
ज— जन्मान्तरीण वायुवेग सहिते ना पारि॥ ४॥
झ— झञ्झावर्तरूप काम मोरे लैया जाय।
ञ— ऐसो गुरुदेव झट रक्ष आमाय॥ ५॥
ट— टान केशे धरि मोरे राख श्रीचरणे।
ठ— ठिकानाय लैया मोरे चल निजगुणे॥ ६॥
ड— डोरि गले बाँधि मोरे राख तव ठाँइ।
ढ— ढाक मोरे कृपाञ्चले तबे रक्षा पाइ॥ ७॥
ण— नाहि भक्तिलेश किंवा शुभ अनुष्ठान।
त— तुमि मोरे प्रसन्न हइ देओ आत्मज्ञान॥ ८॥
थ— थिर करिते नारि मन अनेक यतने।
द— दया कर गुरुदेव ए अधम जने॥ ९॥
ध— धर्मशास्त्रे सुपण्डित नाश सर्वसंशय।
न— नितान्त अयोग्य मुञि धरि तव पाय॥ १०॥
प— परम पवित्र तव महिमा अपार।
फ— स्फुट हओ पद्मरूपे हृदये आमार॥ ११॥
ब— वर्णनातीत तव गुण शास्त्रे अगोचर।
भ— भक्तिते भूषित अङ्ग देखिते सुन्दर॥ १२॥
म— मकरन्द जिनि श्रीवचन सुधाकर।
य— यतीन्द्र श्रीदीर्घतनु अति मनोहर॥ १३॥

[**शब्दार्थः**—आमार—मेरे, वन्दि—वन्दना, ताँहार—उनके, हओ—होओ, मोर—मेरा, ऊन्—उन, हेरि—देखकर, ऋणग्रस्त—बद्ध, हइया—होकर, कराइल—कराया, शशधर—चन्द्र, सेइ—वह, एहेन—ऐसे, ऐहिक—जागतिक, आछि—हूँ, आमि—मैं, तव—आपके]

र— रविरश्मि निन्दित श्रीअङ्ग ज्योतिराशि।
ल— लावण्य श्रीमुखपद्म मन्द मन्द हासि॥१४॥
व— वचन सुगम्भीर शास्त्र सिद्धान्त अपार।
श— श्रवणे त्रिताप नाशे घुचाय संसार॥१५॥
ष— षड्गोस्वामी कृपा दाने जीवे कर पार।
स— संसारे पतित आमि करह उद्धार॥१६॥
ह— हतभाग्य भक्तिहीन अति दुराचार।
क्ष— क्षम मम अपराध कर भव पार॥१७॥
एइ चौतिश पदावली ये करे गान।
श्रीगुरुकृपाय तार घुचये अज्ञान॥१८॥
हेन गुरु कृपाय सबेइ अधिकारी।
मूक वाचाल हइये पङ्गु लङ्घे गिरि॥१९॥
गुरुदेव कर कृपा एइ मोर आश।
प्रति जन्मे हइ जेन तव नित्य दास॥२०॥

[**शब्दार्थः**—खेयाघाट—जिस घाटसे लोग नावमें बैठकर पार होते हैं, माझि—नाविक, हये—होकर, तरी—नाव, आछि—हूँ, वसि—बैठा, हब—होऊँगा, रिपु—कामादि शत्रु, हइल—हो गया, छारखार—नष्ट-भ्रष्ट, काण्डारी—नाविक, वायुवेग—जन्म-जन्मके कर्मफलका प्रभाव, सहिते ना पारि—सह नहीं सकता, झञ्झावर्त—आँधी, ऐसो—आइये, आमाय—मुझे, टान—खींचो, धरि—पकड़कर, ठिकानाय लैया—गन्तव्य स्थान भगवान्के धाम लेकर, तव ठाँइ—अपने पासमें, ढाक—ढक लो, तबे—तभी, किंवा—अथवा, हइ देओ—होकर प्रदान करो, थिर—स्थिर, नारि—अक्षम, ए—मुझ, मुञि—मैं, धरि—धारण, तव पाय—आपके चरणकमल, तव—आपकी, स्फुट हओ—प्रकाशित होओ, देखिते—देखनेमें, मकरन्द—मधु, जिनि—जयकर, सुधाकर—अमृतका भण्डार, यतीन्द्र—संन्यासी शिरोमणि, रविरश्मि—सूर्यकिरण, निन्दित—परास्त करनेवाली, लावण्य—अत्यन्त मनोहर, मुखपद्म—मुखकमल, हासि—हँसी, त्रिताप—तीन प्रकारके कष्ट, घुचाय—समाप्त कर देते है, करह—करो, ये—जो, तार—उसके, घुचये—नाश होता है, हेन—ऐसी, सबेइ—सब लोग, हइये—होकर, एइ—यही, हइ—होऊँ, जेन—जो कि]

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी जन्म-शतवार्षिकीके उपलक्ष्यमें पुष्पाञ्जलि

—त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त मुनि

सर्वप्रथम मैं अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज और श्रीश्रीमद् गौरगोविन्द गोस्वामी महाराजके चरणकमलोंमें अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करता हूँ एवं उनकी अहैतुकी कृपाकी भिक्षा करता हूँ। तत्पश्चात् मेरे शिक्षागुरु एवं अभिन्न-गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके चरणकमलोंमें अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करता हूँ तथा उनकी अहैतुकी कृपा की प्रार्थना करता हूँ। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत जीवनचरित्रको समझना मेरे समान तुच्छ जीवके लिए दुःसाध्य है। फिर भी मैंने अपने कल्याण और उद्धारके लिए उनकी महिमाका स्मरण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है।

ईस्वी सन् १९९८ से २००३ के बीचमें मुझे कई बार उनका सान्निध्य प्राप्त करनेका अवसर मिला है। श्रील वामन गोस्वामी महाराजके जीवनचरित्रमें मैंने एक विशेष वैशिष्ट्य दर्शन किया है। वह है मेरे गुरुदेव श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके प्रति उनका अपार भातृप्रेम। विशेष-विशेष तिथि पर श्रील वामन गोस्वामी महाराज मेरे गुरुदेवको पुष्पार्घ्य अर्पण करते थे, नूतन वस्त्रादि प्रदान करते थे, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कनिष्ठ भ्राताको स्नेह-प्रीति की जाती है। यदि गुरुभ्राताओंमें इस प्रकार स्नेहप्रीति स्थापित होती है, तब समस्त मठ मन्दिर उत्तम भजनस्थलीमें बदल जाएँगे। इतने बड़े शास्त्रज्ञ तथा समस्त गौड़ीय श्लोकावलीके अभिधानस्वरूप होनेपर भी वे निरभिमानी एवं अमानी मानद होकर जिस प्रकार अपने गुरुभ्राता और अन्यान्य वैष्णवोंका प्रचुर सम्मान करते थे, वैसा अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। श्रीमन्महाप्रभुने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीको जो शिक्षा दी थी—'*अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे। ब्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे॥*'—यही शिक्षा उनके जीवनका आदर्श था।

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

वाक्यवेग, मनोवेग, क्रोधवेग, जिह्वावेग, उदरवेग और उपस्थवेग—इन छः वेगोंके विजयी गोस्वामीवर्गके आचरणके वे मूर्त्तिमान् स्वरूप थे। श्रील वामन गोस्वामी महाराज अधिकांश समय मौन अवलम्बन करके रहते थे। विशेष आवश्यक न होनेपर किसीको कुछ भी नहीं कहते थे। वे सदैव कहते थे—'देखो, सुनो, परन्तु किसीको कुछ मत कहो।' यदि हम वाक्यवेगको नियन्त्रित नहीं कर सकते, तब बड़ी बाधा उपस्थित हो सकती है। इसीलिए वे अधिकांश समय मौन होकर निरन्तर कृष्णनाम करते थे। काय-मन-वाक्य द्वारा सर्वदा श्रीकृष्ण-चिन्तन एवं श्रीकृष्णकथा ही थी उनका जीवन।

निरन्तर हरिनाम जपमें निमग्न, अत्यन्त गम्भीर स्वभावयुक्त महापुरुष होनेपर भी वे शिशुसे भी अधिक सरल थे। सरलता ही वैष्णवता है। शुद्ध वैष्णवोंका हृदय सरल और निष्कपट होता है। छोटे-छोटे बच्चोंके साथ उनका व्यवहार अत्यन्त आश्चर्यजनक था। वे अत्यन्त सरल स्वभावयुक्त उन छोटे-छोट बच्चोंके अत्यन्त प्रिय थे—यही आश्चर्यकी बात है। उनकी कृपा-वत्सलताके कारण जितने भक्त उनके संस्पर्शमें आये थे, उनमें-से अधिकांश भक्तोंके हृदयमें जिस प्रकार शुद्ध भक्तिरसका संचार हुआ था, वह आज भी स्पष्ट रूपसे देखा जाता है। मुझे जितनी बार उनसे वार्तालाप करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उससे मुझे यही अनुभव हुआ है कि वे श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके चरणकमलोंमें पूर्ण आत्मनिवेदन किये हुए परमहंस साधु और उनके परिकर थे। उनका प्रत्येक आचरण महाभागवत वैष्णवका आदर्श था। उनके दर्शन और सान्निध्यसे भजनमार्गमें जो प्रेरणा मिली थी, उसे ही संक्षेपमें उनके चरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि स्वरूप प्रदान कर मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

जय श्रीश्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी जय!

श्रील वामन गोस्वामी महाराजकी महिमाका किञ्चित् स्मरण

—श्रीजयदेवदास बाबाजी, वृन्दावन

आदर्श जीवन एवं शिक्षाएँ

गौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं आचार्य होते हुए भी मेरे गुरुजीने कभी अपना कोई बैंक अकाउंट नहीं रखा। वे कहते थे कि "मेरे कुर्तेकी जेब ही मेरा बैंक है।" गुरुजी जब कभी प्रचारके समय जिस किसी मठमें जाते, वहाँ उन्हें जो भी प्रणामी आदि प्राप्त होती, वह सब उस मठके-प्रबन्धकको दे देते या वहाँ दानपेटीमें डाल देते।

श्रीगुरुपादपद्म सदा ही सबसे कहते—"रोते रोते हरिनाम करना चाहिए। हम सब शिशु हैं, इसलिए हमें शिशुके समान सरल और कोमल होकर भगवान्‌को पुकारना होगा, तभी एक माता जैसे अपने शिशुको रोता देखकर स्तन-पान कराती है, ठीक उसी प्रकार भगवान् अपने भक्तकी आर्ति देखकर स्वयं प्रस्तुत होते हैं।"

गुरुजी कहते थे—जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और रूपका अभिमान न होना ही अकिञ्चनता है। श्रीगुरुपादपद्ममें अकिञ्चनता और तृणादपि सुनीच गुण स्पष्ट रूपसे प्रकाशित थे। गुरुजी अपने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिए वर्षाके समय टपकती हुई छतवाले घरमें भी शान्तिपूर्वक रातभर छाता लेकर व्यतीत कर लेते थे, परन्तु कभी गृहस्थ भक्तसे किसी प्रकारकी शिकायत नहीं करते। धनी भक्तोंकी अपेक्षा दीन-दरिद्र भक्तोंके अकिञ्चन स्वभावको देखकर सदा उनके पास जानेके लिए उत्साहित रहते थे। इसी विचारधाराको धारणकर गुरुजी प्रचारके समय अधिकतर गरीब भक्तोंके घर ही रुकते थे।

श्रील गुरुपादपद्मकी समस्त चेष्टाएँ, क्रियाएँ केवलमात्र हरि-गुरु-वैष्णवोंकी प्रसन्नताके लिए ही होती थीं। वे अन्य सबसे अत्यन्त दूर ही रहते थे। समाजमें क्या हो रहा है, कौन क्या कर रहा है, सब कुछ देखते-सुनते भी सदा यही कहते थे—"*आँखे देखि, काने शुनि, मुखे किछु बोल्‌बे ना*" अर्थात् आँखसे देखो, कानसे सुनो पर मुखसे कुछ न बोलो। गुरु महाराजजी सब समय इसका स्वयं भी पालन करते थे। जब कोई व्यक्ति या मठवासी गुरुजीसे कोई सांसारिक वार्ता या किसीके बारेमें किसी प्रकारकी शिकायत करता, तो गुरु महाराज उसका कोई उत्तर न देकर केवलमात्र यही कह देते "हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!" इतना कहकर माला पर हरिनाम करते रहते।

गुरुभ्राताओंका आनुगत्य

श्रील गुरु महाराज गौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य एवं सभापति होते हुए भी एक साधारण साधककी भाँति कोई भी कार्य अपनी इच्छासे नहीं करते थे। समितिके प्रत्येक कार्यके लिए अपने गुरु-भ्राताओंसे परामर्श करते थे।

अन्तिम उपदेश

२००३ दिसम्बरमें श्रील गुरु महाराजकी व्यास-पूजाके बाद वे हुगली स्थित गौड़ीय मठमें रह रहे थे। मथुरा लौटते समय लगभग रात्रि ९:३० बजे, जब गुरुजी अपनी भजनकुटीमें विश्राम कर रहे थे, मैं गुरुजीकी भजनकुटीकी परिक्रमा कर बाहरसे दण्डवत् प्रणाम करके आने लगा, तभी अन्दरसे "हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!" की ज़ोर-ज़ोरसे आवाज आने लगी। वही मेरे लिए श्रील गुरु महाराजका अन्तिम निर्देश था कि सब समय हरिनाम करो। वह मधुर-ध्वनि आज भी प्रतिक्षण मेरे कानोंमें गूँजती रहती है।

मैं अपने दुर्भाग्यके कारण श्रील गुरुपादपद्मका सङ्ग नहीं कर सका, केवल गौड़-मण्डल परिक्रमाके अवसरपर उनके दर्शन हो पाते थे। इस पर भी अपनी अल्पबुद्धि और शक्तिहीनताके कारण उनकी गुणावली और लीलाओंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। अतः श्रील गुरुपादपद्मके चरणोंमें प्रार्थना है कि इस अधमको अपने चरणकमलोंमें स्थान देनेकी कृपा करें।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके अप्राकृत जीवनादर्शकी शिक्षाप्रद कतिपय मधुर एवं अलौकिक स्मृतियाँ और उपदेश-कण

मैं स्वयं आपकी देखभाल करूँगा

परमपूजनीय श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके अप्रकटसे प्रायः ४/५ वर्ष पहलेकी बात है। नवद्वीपमें मैं (श्रीरसिकरञ्जन दासाधिकारी) महाराजकी भजनकुटीरमें जब उनको प्रणाम करने गया तब उनके साथ नाना प्रकारकी बातें होने लगीं। तब पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज प्रसङ्गवश कहने लगे—"एक दिन मैंने बात-ही-बातमें वामन महाराजसे कहा था, महाराज! मेरी देखभाल कौन करेगा? जब मैं वृद्ध हो जाऊँगा, तब कौन मेरे लिए यत्न करेगा? अभीसे बड़ी चिन्ता हो रही है।' तब वामन महाराजने कहा—'आप कोई चिन्ता न करें। यदि कोई भी नहीं रहेगा, मैं स्वयं आपकी देखभाल करूँगा, स्वयं आपका मल-मूत्र साफ करूँगा—इस विषयमें आपको कोई दुश्चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। इस बातको उन्होंने इस प्रकार कहा, जिससे सत्य ही इस विषयमें मुझमें कोई दुश्चिन्ता नहीं रही। यह केवल उनके मुखकी ही बात नहीं थी, सचमुच ही वे इस विषयमें बहुत सचेतन थे।" इस बातको कहते-कहते त्रिविक्रम महाराजके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा।

—श्रीरसिकरञ्जन दासाधिकारी

भगवान्‌को देनेसे कभी कुछ कम नहीं होता

एकबार किसी उत्सवके समय श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपके पुजारीको ठाकुरजीको नई पौशाक धारण कराने की इच्छा हुई। नई पोशाकमें लगभग ५०००/-रुपये का खर्चा आएगा। पुजारीने पूज्यपाद वामन महाराजसे नई पौशाक तथा उसके खर्चेके विषयमें बताया। तब पूज्यपाद वामन महाराजने अपने सेवकसे पूछा तुम्हारे पास क्या इतना पैसा है? सेवकने कहा—'है, किन्तु आपकी औषधिके लिए रखा है।' पूज्यपाद महाराजजीने सेवकको थोड़ा डाँटते हुए कहा,—"तुमको हरि-गुरु-वैष्णवोंपर क्या बिल्कुल भी विश्वास नहीं है? भगवान्‌को देनेसे कभी कुछ कम नहीं होता है। जो है वह दे दो।" तब सेवकने वृन्दावनसे पोशाक-श्रृंगार आदि लानेके लिए ५०००/-रुपये दे दिये। उसी दिन संध्यारतिसे पूर्व एक वृद्ध व्यक्ति पूज्यपाद वामन महाराजजीके दर्शनके लिए आए और प्रणाम करके उनको पच्चीस हजार रुपए देकर कहने लगे कि—कृपया इसे हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए स्वीकार करें। पूज्यपाद महाराजजीने उसे प्रसाद पानेके लिए कहा। इसपर उन वृद्ध व्यक्तिने कहा कि आप एक साबुत फल दे दीजिए। फल लेकर वह वृद्ध बाबा सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते ही न जाने कहाँ अदृश्य हो गए।

—श्रीओमप्रकाश व्रजवासी

ज्वलन्त उदाहरण

जगद्गुरु गौड़ीय गोष्ठीपति परमहंस आचार्य-वर्य श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादने कहा है—"बद्धजीव तबतक गुरुसेवाकी प्रदर्शनी खोलकर रखता है, जबतक उसके अपने स्वार्थमें व्याघात नहीं पहुँचता। अपने घृणित स्वार्थमें व्याघात उपस्थित होते ही उसका कृत्रिम गुरुसेवाका आदर्श समाप्त हो जाता है।" किन्तु इन महाजन—श्रील वामन गोस्वामी महाराजका समग्र जीवन—गुरु-वैष्णव-सेवाके क्षेत्रमें एक अनन्य आदर्शस्थल है। श्रील प्रभुपाद कहते हैं—"बद्धजीवोंके सम्मुख एक ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित न रहनेपर वे भगवद्भजनकी प्रेरणा प्राप्त नहीं कर सकते।"

भजन तथा प्रचार एक ही तात्पर्यबोधक

निःसन्देह कहा जा सकता है कि जगज्जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही भगवान्‌की इच्छासे इन महाजन—श्रील वामन गोस्वामी महाराजका आविर्भाव हुआ है। एकबार उत्तर २४ परगणाके किसी एक क्षेत्रमें प्रचारके समय किसी एक वाचाल सेवकका मन्तव्य था—"यहाँ प्रचारमें आकर कोई लाभ नहीं है, केवल भजन ही नष्ट होता है।" उस समय श्रील वामन गोस्वामी महाराजने कहा था—"भजन तथा प्रचार एक ही तात्पर्यबोधक न होने तक प्रचार सम्भव नहीं है। अपनी कुछ बहादुरी दिखानेका नाम प्रचार नहीं है।" श्रील महाराजने समझा दिया कि जीवोंके प्रति दयाका भाव रहनेपर ही प्रचार-सेवा सम्भव है। उन्होंने बता दिया कि—अभावनीय सहनशीलता, धैर्य तथा भजनबल-रहित होनेपर जीवोंके प्रति दयाका प्रसङ्ग तथा प्रचारप्रसङ्ग केवल प्रवञ्चनामात्र है।

सदुर्लभ प्रचार-आदर्श

एकबार गुरुभ्राताओंके साथ श्रील वामन गोस्वामी महाराज आसाममें प्रचारके लिए गये। वहाँपर विराट धर्मसभाका आयोजन था। किन्तु उसी समय प्रबल वर्षा होनेके कारण उनका कोई भी गुरुभ्राता सभास्थलपर जानेके लिए प्रस्तुत नहीं हो रहा था। अन्तमें श्रील महाराज स्वयं सिरपर छाता तानकर तथा अपने वस्त्रोंको घुटनोंके ऊपरकर बहुत कष्टपूर्वक उस सभा-स्थलीमें उपस्थित हुए। अति आश्चर्यका विषय था कि—हजारों सरल श्रद्धालु लोग इस भयानक दुर्योगकी उपेक्षाकर साधुसङ्गके लोभसे उस सभास्थलमें उपस्थित थे। उस सभामें इन महापुरुषने लगातार २ घण्टेतक हरिकथामृतका परिवेषणकर उन दीन-हीन लोगोंपर जो कृपा की थी, वह अवश्य ही 'जीवे दया'के उत्तम आदर्श-रूपमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी रहेगी। ऐसा प्रचार-आदर्श कहीं अन्यत्र नहीं देखा जाता। वास्तवमें यह बहुत दुर्लभ ही है।

११नं गाड़ी ही यथेष्ट है

श्रील वामन गोस्वामी महाराजके प्रत्येक सिद्धान्त-विचारसे मैं मुग्ध हो जाता था। मैं उनकी प्रत्येक क्रिया-कर्ममें अभिनव दिग्दर्शन प्राप्त करता था। एकबार कलकत्ता हालदार बागानमें स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मठमें एक धनी भक्त उन्हें एक एम्बेस्डर गाड़ी उपहारमें देनेके लिए आया।

उसने श्रील महाराजके हाथमें गाड़ीकी चाबी दे दी। तब श्रील महाराजने उसकी बातें सुनकर हँसते हुए उसे चाबी वापस करते हुए कहा—"प्रचारके लिए मुझे गाड़ीकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसके लिए तो ११नं गाड़ी ही (दो पैर) यथेष्ट है, उसके बाद ट्रेन है, बस है। कौन इस गाड़ीके झमेलेमें जायेगा। इसके लिए एक ड्राइवर रखो, इसमें तेल भरो, ऐसे कई झमेले हैं, इसके साथ। और फिर मुझे देखकर सभी लोग गाड़ीमें चढ़नेका अभ्यास बना लेंगे। तब और भी बड़ी समस्या खड़ी हो जायेगी।" वास्तवमें ही निष्किञ्चन गुरु-वैष्णवोंके समग्र जीवनमें किसी प्रकारके अभावकी शिकायत नहीं रहती तथा वे किसीसे भी किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं रखते।

—श्रीश्यामदास बाबा

संन्यास लेकर मैंने बड़ी भूल कर दी है

मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके अप्रकटके बाद अनुष्ठित विरह-सभामें श्रील वामन महाराजने जो वक्तृता दी थी, वह आज भी मेरे कर्ण-कुहरमें ध्वनित हो रही है। गुरु-वैष्णवोंके विरहमें किस प्रकार उनका गुणगान कीर्तन करना होता है, उसे उसी दिन उन्होंने हमें दिखा दिया है। हम अधिक क्या जानते हैं? संन्यास ग्रहणके बाद जब श्रील वामन महाराज मेरे गुरुदेवको प्रणाम करने आये, तो मेरे गुरुदेवने उनको 'आप' कहकर सम्बोधन किया। तब श्रील वामन महाराजने मेरे गुरुदेवसे कहा—"महाराज, संन्यास लेकर मैंने बड़ी भूल कर दी है, पहले तो ठीक ही था। पहले आप मुझे किस प्रकार मधुर स्नेहशील वाक्योंसे 'तुम, तुम' कहते थे, और आज 'आप' कहकर मेरा गौरव बढ़ा रहे हैं।" तब श्रील गुरुदेवने कहा था—"महाराज, यदि हम संन्यासीका सम्मान नहीं करेंगे, तो जगत् भी नहीं करेगा। जगत्के लोगोंकी शिक्षाके लिए इसकी आवश्यकता है। तुम मेरे पास पहले जैसे थे, आज भी उसी प्रकार हो, किन्तु यह गुरुदेव-प्रदत्त संन्यासवेश और संन्यासी-पदवीकी मर्यादा है। इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है।"

—श्रीभक्तिप्रणत मुनि (श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन, पुरी)

मुझे तुम लोगोंसे भय लगता है

श्रील गुरुमहाराजके किसी एक गुरुभ्राताके मुखसे सुना था—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी ठाकुरने किसी एक समय कहा था—"मैंने आश्रित समस्त मठवासी शिष्योंको जितने परिमाणमें शासन किया है, उसे एकत्र करने पर भी वह अकेले वामन महाराजको किये गये शासनके परिमाणसे अनेक कम होगा।" अर्थात् शासनकी पात्रताके अनुसार शासन किया जाता है। जहाँपर पात्रता है, वहाँ अबाध शासन होता है। *'हेन कि हइबे मोर नर्म सखी गणे। अनुगत नरोत्तमे करिबे शासने।'* हममें उस पात्रताका अभाव है, इसलिए हमपर शासन करनेके लिए गुरुदेव दस बार सोचते थे। गुरु महाराजको कहते हुए सुना जाता—"मैं श्रीगौरसुन्दरसे भय नहीं करता, श्रीश्रीराधाविनोदविहारीसे भय नहीं करता, श्रीनृसिंहदेवसे भय नहीं करता, षड्गोस्वामीसे भय नहीं करता, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर, प्रभुपाद या श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीसे भय नहीं करता, किन्तु मुझे तुम लोगों[बद्धजीवों]से भय लगता है।" इस वाक्यसे ही स्पष्ट हो जाता है कि हममें उस शासन-पात्रताकी योग्यताकी कैसी दुर्दशा है।

तैयार मवेशीके गीध

श्रील गुरुमहाराज कभी-कभी बोलते थे—**'सब तैयार मवेशीके गीध हैं।' 'वह नाम तुमलोग गाओ, हम सुनते हैं।' 'जिसका दही है, उसका नहीं है, चोर दही ले भागता है।'** इन सभी वाक्योंमें कितना शासन निहित है, वह क्या हम समझ सकते हैं? हम उनके प्रत्यक्ष शासनको हजम नहीं कर सकते हैं, इसलिए वे इस प्रकार code language का प्रयोग करते थे। 'तैयार मवेशीके गीध'—इसका क्या अर्थ है? मवेशी जब मर जाता है, तब उसे गड्ढेमें फेंक दिया जाता है। चमड़ा-व्यवसायीका दल वहींपर अपेक्षामें रहता है, कब कोई मृतपशुको फेंक जायेगा। अन्य एक जन्तुदल भी वहींपर अपेक्षा करता है, वह है—गीधोंका झुण्ड। वे अपेक्षामें रहते हैं कि कब चमड़ा उतारना शेष होगा। इन गीधोंको ही बोला जाता है—'तैयार मवेशीके गीध।' अर्थात् चमड़ा उतारकर वह मवेशी उनके भोजनके लिए तैयार है, अब गीध वहाँ जाकर उसपर टूट पड़ेंगे। यह कहावत गुरुमहाराज हमारे लिए प्रयोग करते थे। वे कहना चाहते थे कि मठवासीगण स्वयं कोई परिश्रम नहीं करेंगे, उनको सब कुछ तैयार करके देना होगा, तब वे वहाँ जाकर भोग करेंगे।

हम जिन समस्त प्रचार क्षेत्रोंमें जाते हैं, वे सब गुरुमहाराजने तैयार किये हैं, अब हम वहाँ जाकर मात्र चंदा वसूलकर आ जाते हैं। गीध केवल भोग करता है, समाजके लिए उसका अवदान नहीं है। केवल चंदा वसूली करके आ जाना भोगमात्र है, समाजमें भगवत् कथाके प्रचार द्वारा मनुष्यमें धर्म-सचेतनता उत्पन्न न करने पर वह गीधकी वृत्ति ही हुई। भिक्षा करने जाकर यदि यही अपेक्षा रहती है कि कब कोई चंदा देगा, अपितु गृहस्थ कितना धर्म-सचेतन हुआ, हरिभजनमें कितना अग्रसर हुआ, उसके प्रति कोई माथापची नहीं है, तब वह गीध-वृत्ति ही हुई। गुरुमहाराज कहते थे—"गृहस्थका यदि मङ्गल नहीं किया गया, तब उसका अन्न 'विषयीका अन्न' है, उस अन्नसे बदहजमी होती है।"

वह नाम तुमलोग गाओ, हम सुनते हैं

'वह नाम तुमलोग गाओ, हम सुनते हैं' अर्थात् तुमलोग नामकीर्तन करो, हम केवल श्रवण करेंगे। गुरुमहाराजके इस वाक्यका गूढ़ अर्थ यह है कि कीर्तन करनेके लिए परिश्रम होता है, उसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। हम बड़े आग्रहपूर्वक श्रवण कर सकते हैं, क्योंकि इसमें कोई परिश्रम नहीं है, केवल वहाँ बैठकर श्रवणका अभिनय करनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। परिश्रम-विमुख मठवासियोंके लिए ही गुरुमहाराज ये सब बातें बोलते थे। पुनः इस वाक्यमें और एक गूढ़ अर्थ है—यहाँ जो 'हम सुनते

हैं' कहा गया है, उसका अर्थ है कि हम चिरकाल केवल सुनते ही रहेंगे। सुनकर अपने शरीरको झटकाकर उठ खड़े होंगे, किन्तु प्राणवन्त होंगे और दूसरोंके निकट उसका कीर्तन करेंगे, प्रभुपादके '*प्राण आछे यार, सेहेतु प्रचार*' वाक्यको सार्थक करेंगे, वह नहीं। हम सदैव प्राणहीन शरीरके समान पड़े रहेंगे और सुनते ही रहेंगे। इसे 'जागते हुए शयन' कहा जाता है। यह मात्र कपटता है।

दही जिसका है, उसका नहीं, चोर दही ले भागता है

गुरुमहाराजके इस वाक्यका सरलार्थ यह है कि जिसके लिए दही, उसे न देकर, कोई अन्य व्यक्ति उसे भोग कर रहा है। अर्थात् जो जिस वस्तु, पद या सम्मान आदि प्राप्त करनेके लिए योग्य हैं, उनको उन सभीसे वञ्चितकर बीचमें-से दूसरा कोई उसका लाभ ले रहा है। योग्य व्यक्तिकी योग्यताका सम्मान देना न सीखनेपर वहाँ किसी अयोग्य व्यक्तिको आनेके लिए अवसर देना होता है, जिससे महा अनर्थ उदित हो जाता है।

'नहीं हो रहा है' की तालिका

अनेक लोग श्रील गुरुमहाराजके निकट आकर कहते—'गुरुदेव, साधनभजन नहीं हो रहा है, भगवत् स्मरण नहीं हो रहा है इत्यादि।' केवल 'नहीं हो रहा है' की तालिका जब सुनाते थे, तब गुरुमहाराज बोलते—'*हाते दइ, पाते दइ, तबु बले कइ कइ*' अर्थात् हाथमें दही है, पात्रमें दही है, फिर भी बोलते हो कहाँ है, कहाँ है।' गुरुमहाराजकी इस बातका तात्पर्य समझनेकी तनिक चेष्टा करें। यहाँपर फिर 'दही' शब्द आया है। अर्थात् तुम्हारे हाथमें दही दिया गया है, पात्र या थालीमें दही दिया गया है, फिर भी तुम बोलते हो—कहाँ है दही, कहाँ है दही? अर्थात् श्रील गुरुमहाराजने हमें 'हाथमें' हरिनामकी माला दी है, 'पात्रमें' अर्थात् सिंहासन पर साक्षात् श्रीविग्रहको सेवा करनेके लिए दिया है, फिर भी हम बोलते हैं, कहाँ हैं भगवान्, कहाँ हैं भगवान्? श्रीनाम ही भगवान् हैं एवं श्रीविग्रह भगवान्के प्रतीक नहीं, अपितु साक्षात् भगवान् हैं। परन्तु इसके बाद भी हमारा यह अनुभव नहीं होता है कि अब भगवान्को पानेकी और कोई अपेक्षा नहीं है, हमने

तो साक्षात् भगवान्‌को पा लिया है। अपितु हम सोचते हैं कि हम हरिनाम करते जाएँ, विग्रहसेवा करते जाएँ, देखते हैं, गुरुदेवकी करुणा होनेपर किसी जन्ममें भगवान्‌को पा लेंगे। इसलिए गुरुदेव कह रहे हैं—"हा हरि! पाओगे क्यों बोल रहे हो, तुम तो पा चुके हो। अब परम आदरपूर्वक उनकी सेवा करो। तुम्हारे अनुभवका द्वार बन्द रखकर यन्त्रवत् सेवा करने पर मैं और किस प्रकार तुम लोगोंकी सहायता कर सकता हूँ?"

—श्रीभक्तिवेदान्त सन्त

हरिकथा ही प्राण

एकबार सुन्दरवनमें एक भक्तने श्रील गुरुमहाराजको अपने घरमें तीन दिनतक हरिकथा कहनेके लिए आमन्त्रित किया। गुरु महाराज—गोवर्धन प्रभु, कानाई प्रभु तथा चिन्मय प्रभुको साथ लेकर वहाँपर हरिकथा बोलनेके लिए गये। किन्तु हमने वहाँपर जाकर देखा कि गुरुदेवको १०२ डिग्री ज्वर हो गया था तथा वे रजाई ओढ़कर सो गये। हम सभी लोग चिन्तित हो गये। हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि आज गुरुमहाराज हरिकथा परिवेषण नहीं कर पायेंगे। परन्तु हरिकथाका समय होनेपर उन्होंने हमसे कहा—'तुम लोग कीर्तन करने जाओ मैं आ रहा हूँ।' तत्पश्चात् वे चादर ओढ़कर सभामें आये तथा स्वाभाविक रूपसे लगातार ३ घण्टे तक हरिकथा बोलते रहे। इसी प्रकार वे लगातार तीन दिनतक ज्वरकी अवस्थामें ही उसी प्रकारसे प्रतिदिन हरिकथा बालते रहे, परन्तु किसीका अपने ज्वरके विषयमें कुछ समझने भी नहीं दिया। हमसे बोले—'यदि गृहस्थके घरमें मैं प्रसाद नहीं पाऊँगा तो वे अपना मन खराब कर लेंगे। इसलिए तुम लोग कक्ष बन्दकर प्रसाद पा लेना तथा मेरे लिए थोड़ा-सा barley उबालकर रख देना। किन्तु ध्यान रहे कि घरके लोग इसे समझ न पायें।' गुरुमहाराज जब भी किसी गृहस्थके घरमें जाते थे, तो सर्वदा सावधान रहते थे कि कहीं घरके लोगोंको किसी प्रकारसे उद्वेग न हो। और हरिकथा थी गुरुमहाराजका प्राण—वे चाहे कितने ही अस्वस्थ क्यों न हों, किन्तु हरिकथा कीर्तनमें वे किसी प्रकारसे भी अस्वस्थताको महत्व नहीं देते थे।

—श्रीगोवर्धनदास बाबाजी

गुरुदेव ही श्यामसुन्दरके वास्तविक सेवक हैं

कोई एक दुःखी भक्त श्यामसुन्दरके लिए प्रतिदिन फूलकी माला गूँथते थे एवं गुरुमहाराजके श्रीचरणोंका चिन्तन करते थे। वे बहुत अस्वस्थ थे, अनेक बार उनका अस्त्रोपचार(surgery) हुआ था। वे मन-ही-मन सोचते थे—'मठकी सेवापूजा न करने पर मैं सबके लिए बोझ हो जाऊँगा। क्या मैं कोई सेवाकार्य नहीं कर सकूँगा?' दुःखी होनेपर भी उनका गुरुमहाराज और भगवान्‌के चरणोंमें अत्यन्त लगाव था। उस लगावके कारण वे प्रतिदिन फूलोंकी माला गूँथते थे। एक दिन मध्याह्न प्रसाद-सेवाके बाद वे माला गूँथनेके लिए बैठे थे। प्रायः सात-आठ माला गूँथना होता था। प्रथम माला जब आधी गूँथ ली, तब हठात् उनके पेटमें खूब पीड़ा होने लगी। तब वे माला गूँथना बन्द कर पास रखे bench पर लेट गये एवं सोचने लगे कि 'हे भगवन्! हे गुरुमहाराज! क्या मैं आज भगवान्‌को माला नहीं पहना सकूँगा? हे गुरुमहाराज, हे करुणासागर, हे भक्तवत्सल! दया करो प्रभो!' इस प्रकार रोते-रोते वे वहींपर सो गये एवं

उसी अवस्थामें स्वप्नमें देखने लगे कि—गुरुमहाराज उसके पास आये हैं, उसके सिरपर कोमल हाथ फेरकर कह रहे हैं—'अरे, खूब कष्ट हो रहा है न? अच्छा, जरा विश्राम कर लो, मैं माला गूँथ देता हूँ।'

इधर पुजारी जब ठाकुरजीको जगानेके लिए घण्टा बजाने लगे, तब उनकी नींद खुली तथा उन्होंने उठकर देखा—सभी माला गूँथी हुई हैं। वे सोचने लगे—'मैंने सुना है कि गुरु-वैष्णव करुणामय होते हैं। उनकी करुणाकी कोई तुलना नहीं है। दीन-हीनको भगवान् अधिक दया करते हैं। परन्तु हे गुरुदेव! मैं तो दीन-हीन नहीं हो सका, मैं अत्यन्त अयोग्य हूँ, हे प्रभो! कृपा करें जिससे कि मैं आपका यथार्थ दास हो सकूँ।' और उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

शास्त्रमें है—*श्रीविग्रहाराधन-नित्य-नाना, शृङ्गार-तन्मन्दिर-मार्जनादौ।* गुरुदेव ही श्यामसुन्दरके वास्तविक सेवक हैं, हम नाममात्रके हैं, इस घटनासे यह प्रदर्शित हुआ है। उन्होंने मुझ जैसे अभागेको कृपापूर्वक यह समझानेके लिए ही यह सब दिखाया।

—श्रीभक्तिवेदान्त भक्तिसार(सुबलसखा दास)

मैं कदापि श्रीविग्रहको गङ्गामें विसर्जन नहीं कर सकता

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रीलक्ष्मी-वराहदेव नित्य पूजित होते हैं। एक बार श्रीमन्दिरके पुजारीकी असावधानीके कारण श्रीलक्ष्मीदेवीके श्रीहस्तकी कुछ अङ्गहानि हो गयी। पुजारीके साथ कुछ गुरुभ्राताओंने श्रील गुरुमहाराजके पास जाकर निवेदन किया—'लक्ष्मीदेवीकी अङ्गहानि हो गयी है। शास्त्रोक्त नियमके अनुसार जयपुरसे नयी श्रीमूर्त्ति लायी जाए एवं पूर्व श्रीमूर्त्तिको गङ्गामें विसर्जन दे दिया जाए।' श्रील गुरुमहाराजने कहा—'माता-पिता या सन्तानका यदि किसी समय हाथ-पैर टूट जाता है, क्या तब नये मातापिता या सन्तान लाकर पुरानेका विसर्जन कर दिया जाता है? अथवा चिकित्सक बुलाकर चिकित्सा करते हुए उन्हें ठीक किया जाता है? उसी प्रकार भगवान्-भगवतीकी यदि कदापि दुर्घटनाके कारण कुछ अङ्गहानि हो जाती है, तब क्या उस अङ्गको ठीक न कर उनका विसर्जन कर देना होगा? सम्बन्ध-ज्ञान जागने पर कोई ऐसे विसर्जनकी बात सोच नहीं सकता। मैं कदापि श्रीविग्रहको गङ्गामें विसर्जन नहीं कर सकता।' तब एक गुरुभाईने प्रश्न किया—'तब शास्त्रमें विसर्जनका विधान क्यों दिया गया

है?' गुरुमहाराजने कहा—'अङ्गहानि होनेपर सम्बन्धरहित व्यक्ति श्रीमूर्त्तिके प्रति प्राकृत विचार कर सकता है और अपराध कर सकता है, इसलिए इस प्रकार

विधान है। स्मार्त्त विचारोंको माननेवाले व्यक्तियोंका श्रीमूर्त्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता है, इसलिए वे शास्त्रकी दुहाई देते हैं। जिस स्थान पर सम्बन्ध ज्ञान है, वहाँ इस विधानको माननेकी आवश्यकता नहीं है। अनेक स्थानों पर इस विधानका पालन नहीं किया गया है।' इस कथाको सुनकर सब लोग गम्भीर होकर श्रील गुरुमहाराजको प्रणामकर चले गये।

—श्रीभक्तिवेदान्त न्यासी

जाओ श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजसे हरिनाम-दीक्षा ग्रहण करो

एकबार श्रील गुरुमहाराज खड़गपुर स्थित श्रील भक्तिजीवन जर्नादन गोस्वामी महाराजके श्रीगौरवाणीविनोद आश्रमके वार्षिक उत्सवमें उपस्थित हुए। श्रील गुरुमहाराजका श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजके साथ बड़ा घनिष्ठ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था। खड़गपुरमें ही गुरुमहाराजका एक शिष्य रहता था, उसने नया-नया विवाह किया था। गुरुमहाराजका आगमन हुआ जानकर वह अपनी नवविवाहिता पत्नीको लेकर मन्त्र दिलवानेके लिए गुरुमहाराजके कक्षमें आश्रमके तीसरे तले पर आया। उसने गुरुमहाराजको प्रणाम किया और अपनी पत्नीका परिचय कराया, तो गुरुमहाराज उसके आने का कारण समझ गये और उसकी पत्नीको लक्ष्यकर बोले, "हरिनाम करना चाहते हो, बहुत अच्छी बात है, जाओ श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजसे हरिनाम-दीक्षा ग्रहण करो।" ऐसा आदेश पाकर वह अपनी पत्नीको लेकर दूसरे तलेपर श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजके कक्षमें आया और उनसे निवेदन किया कि श्रीगुरुमहाराजका कहना है कि आप मेरी पत्नीको हरिनाम-दीक्षा प्रदान कीजिए।

यह सुनकर श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजने उससे कहा, "बाबा! तुम पुनः अपने गुरुमहाराज श्रील वामन महाराजके पास जाओ और उन्हींसे अपनी पत्नीको हरिनाम-दीक्षा दिलवाओ, क्योंकि पति-पत्नी दोनों ही यदि एक ही गुरुके शिष्य हों तो सबसे अच्छा है। और अपने गुरुदेवको कहना कि वे क्या इस मठको अपना मठ नहीं मानते हैं और इसीलिए यहाँ पर

हरिनाम-दीक्षा नहीं देना चाहते? और यदि वे किसीको शिष्य करते हैं तो क्या वह मेरा शिष्य नहीं हुआ? क्या वे हमें अलग समझते हैं? अतः उनसे जाकर कहना कि मैं(जनार्दन महाराज) उनसे हरिनाम-दीक्षा देनेके लिए अनुरोध कर रहा हूँ।" शिष्य बेचारा पुनः गुरुमहाराजके पास गया और उनको सब बात बतलायी। यह सुनकर श्रील गुरुमहाराज मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले,—'*हरि हरि! कबे मुइ वैष्णव चिनिब।*" फिर उन्होंने उसकी पत्नीको हरिनाम-दीक्षा प्रदान किया और उससे कहा कि जाकर पूज्यपाद श्रील जनार्दन महाराजको प्रणाम करना तथा कहना

कि मैंने उनके आदेशका पालन किया है। ऐसा अद्भुत सम्बध था दोनोंमें। वास्तवमें शुद्धवैष्णवोंके हृदयमें सङ्कीर्णता नहीं होती। उनके हृदयमें अपने-परायेका भाव नहीं होता। उनकी दृष्टिमें जीवमात्र ही भगवान्‌का अंश है तथा उन्हें इस बातकी अनुभूति भलीभाँति होती है कि हम सब श्रीमन्महाप्रभुकी धारामें हैं। अतः मठोंमें या मठवासियोंमें किसी प्रकारका भेदभाव तत्त्वज्ञान तथा अनुभवकी कमीको ही प्रदर्शित करता है।

यदि कहीं छवि लगानी हो, तो मेरे गुरुवर्गकी लगाओ

एकदिन श्रील गुरुमहाराज शेवड़ाफुलिमें श्रीमाधवजी गौड़ीय मठमें अपनी भजनकुटीमें बैठकर श्रीनामभजन कर रहे थे। उस समय मैं बाहर बारामदेमें श्रील गुरुमहाराजका एक विशाल आलेख्य(चित्रपट) लगानेकी चेष्टा कर रहा था। अपने कक्षके भीतरसे श्रील गुरुमहाराज यह देखकर बारामदेमें आ गये। उन्होंने मुझसे पूछा—"क्या हो रहा है?" मैंने कहा—"अपने गुरुदेवकी एक छवि लगा रहा हूँ।" यह सुनकर श्रील गुरुमहाराज बोले—"मेरे जीवित रहते मेरी छवि कहीं मत लगाना।" यह सुनकर निरुपाय होकर मैंने छवि लगानेका विचार छोड़ दिया। वे बोले—"यदि कहीं छवि लगानी हो, तो मेरे गुरुवर्गकी, श्रीगौर-नित्यानन्द तथा श्रीराधाविनोदबिहारीकी छवि लागाओ, इससे मुझे बहुत सन्तुष्टि मिलेगी।" परन्तु जिससे उनका स्वयंका सम्मान बढ़े, ऐसा कोई भी कार्य वे हमें नहीं करने देते थे। 'अमानित्व गुण' केवल उनमें ही पूर्णरूपसे देखनेको मिला।

नरहरि प्रभु निद्रित मुझको चुपचाप थोड़ा हिला देते

सेवाके द्वारा किस प्रकार गुरु-वैष्णवोंके मनको जीत सकते हैं, उसका उदाहरण श्रील गुरुमहाराजके जीवनमें देखा जाता है। प्रतिदिन रात १२ बजे नरहरि सेवाविग्रह प्रभु सेवक सन्तोषको नींदसे जगाते थे। श्रील गुरुमहाराजकी भाषामें,—"नरहरि प्रभु निद्रित मुझको चुपचाप थोड़ा हिला देते थे, मैं समझ जाता था कि प्रभु आये हैं। तुरन्त बिस्तर छोड़कर गामछा पहनकर प्रभुजीके पीछे-पीछे चलता, जहाँ एकके बाद एक अनेक शौचालय थे। नरहरि प्रभु टार्च लेकर खड़े रहते, मैं एक झाड़ू और एक बाल्टी जल लेकर प्रत्येक शौचालयको साफ करता। उस समय गड्ढे वाले संडास (Pit Latrine) की व्यवस्था थी। पहले दिनके भरे हुए पात्रोंको खाली कर दूरमें एक निर्दिष्ट स्थानपर समस्त मलको फेंककर मिट्टीसे ढककर आता था। उसके बाद स्नानकर कुछ विश्राम करता था। सभी वैष्णवोंके नींदसे जगनेसे पहले यह मेरा प्रतिदिनका सेवाकार्य था।" श्रील नरोत्तम ठाकुर

द्वारा की गयी ऐसी विशेष 'गुरुसेवा' हमारे गुरुमहाराज श्रीचैतन्यमठमें रहते समय प्रतिदिन करते थे।

प्रभुपादके सेवकगण मुझे स्नेहवशतः मना नहीं करते थे

शीतकालके समय श्रीचैतन्य मठकी जमीन पर प्रचुर रबि-फसलकी खेती की जाती थी। उस समय बालक सन्तोष खेतीसे कच्ची-कच्ची मटर फली, कच्चे छोले तोड़कर ले आते। श्रील प्रभुपाद easy chair पर बैठकर ग्रन्थ अध्ययन करते थे। बालक सन्तोष उन सब कच्ची मटर फली और कच्चे छोलेका छिलका उतारकर प्रभुपादको देते। प्रभुपाद एक हाथसे ग्रन्थ धारण किये हुए टकटकी लगाकर अध्ययन करते तथा अन्य हाथसे सन्तोष द्वारा दिये हुए द्रव्यको ग्रहणकर खाते थे। सन्तोष छोटे बालक थे, इसलिए प्रभुपादको कोई इसमें कोई संकोच न था। वास्तवमें सन्तोषमें जो स्वाभाविक निष्कपट वैष्णव-सेवाकी वृत्ति थी, उसका अनुभव करके ही श्रील प्रभुपादने उनको ऐसा अधिकार दिया था। श्रील गुरुमहाराजकी निजस्व भाषामें—"प्रभुपाद चैतन्यमठमें जब-जब रहते थे, तब मैं प्रभुपादके कमरेमें चला जाता था। प्रभुपादके कोई भी सेवकगण मुझे स्नेहवशतः मना नहीं करते थे। मैं प्रभुपादके वस्त्रोंको धोता, कभी-कभी उनके अङ्गोंका संवाहन करता, इसमें प्रभुपाद कोई संकोच अनुभव नहीं करते थे।" प्रभुपाद अत्यन्त श्रुतिधर व्यक्ति थे अर्थात् किसी भी विषयको सुनते ही उसे याद कर सकते थे। बालक सन्तोषमें भी वैसा गुण देखकर वे उसके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट और स्नेह-परायण थे। इतनी कम आयुमें अपने माता-पिताको छोड़कर आये हुए ऐसे प्रतिभावान और निष्कपट सेवावृत्तियुक्त बालकके प्रति किसका स्नेह नहीं होगा? इसलिए अत्यन्त स्नेहपूर्ण होकर प्रभुपादने सन्तोषको अपने मुखसे अनेक श्लोक, स्तव-स्तुति सिखायी थी, साधन-भजन करनेके लिए अनेक उपदेश दिये थे।

सादा जीवन और उच्च विचार

हम लोगोंने जब श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रील गुरुमहाराजकी भजनकुटीके बाथरूममें मार्बल पत्थर लगानेके लिए श्रील गुरुमहाराजके समक्ष प्रस्ताव रखा, तो उसे सुनकर गुरुमहाराज बोले—"देखो, मेरे लिए तो यह सीमेण्टका फर्श ही अच्छा है। वैष्णवोंका सर्वदा एक ही विचार होना चाहिए—plain living and high thinking। जीवनयात्रा साधारणरूपमें होनी चाहिए, तभी उन्नत स्तरकी विचारधारामें प्रवेश सम्भव है। तुम लोग किसलिए एक धनी विषयी व्यक्तिकी जीवनयात्राके प्रति आकृष्ट हुए हो? इसके द्वारा परमार्थका मार्ग रुद्ध हो जायेगा।" आज इन सब शिक्षाओंके पुनः जागरणकी आवश्यकता आ पड़ी है।

—श्रीभक्तिवेदान्त सिद्धान्ती(पतितपावन दास)

एक व्यक्ति इतना सब कैसे जान सकता है?

श्रील गुरुमहाराज फूलोंको बहुत पसन्द करते थे। हम शिलिगुड़िके श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठमें दूसरे तले पर गुरुमहाराजकी भजन कुटीरके सामने बेला, गुलाब, डेहलिया आदि विभिन्न ऋतुकालीन फूलोंकी खेती करते थे। इसकी परिचालना गुरुमहाराज स्वयं करते थे। खेतीके विषयमें उनकी अभिज्ञता अतुलनीय थी। गुरुमहाराजसे सुना था कि वे जब चुँचुड़ामें रहते थे, तब उन्होंने एक बड़े शीशेके पात्रमें मिट्टी डालकर उसमें धान और आलूका 'कलम' (Grafting) किया था। उससे एक साथ ऊपर धान और मिट्टीके

नीचे आलू फले थे। शीशेके पात्रमें होनेके कारण बाहरसे आलू दिखायी देते। एक कृषि-प्रदर्शनीमें गुरुमहाराजके इस प्रकल्पको प्रथम पुरस्कार मिला था। और भी सुना था कि, परमगुरुदेव मिर्ची पसन्द करते थे, इसलिए गुरुमहाराजने चुँचुड़ामें परमगुरुदेवकी भजनकुटीके बरामदेमें छोटे-छोटे टबमें प्रायः ७-८ प्रजातिकी मिर्चीकी खेती की थी। इसे देखकर परमगुरुदेव बड़े आनन्दित होते थे। इसके अतिरिक्त किसी पेड़में फल न होनेपर कौन-सा ट्रीटमेन्ट करना होगा, उसे गुरुमहाराज तुरन्त बोल देते। इन सबको मैं केवल सुनता था, याद नहीं रख पाता था। उनके साथ एक बार रेलगाड़ीमें यात्रा करते समय वे जिस पेड़को देखते, उसका वैज्ञानिक नाम, उपकारिता आदि कितना कुछ बोल जाते—उसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। केवल सोचता, एक व्यक्ति इतना सब कैसे जान सकता है?

भगवान्‌को कोई भी फूल तोड़कर देनेपर वे प्रसन्न नहीं होते

श्रील गुरुमहाराजके निर्देशके अनुसार ही हम शिलिगुड़िके श्यामसुन्दर मठमें फूलोंकी खेती करते थे। किन्तु गुरुमहाराज बागानसे किसीको भी हठात् फूल तोड़ने नहीं देते थे। वे कहते—'तुमलोग नहीं जानते हो, कब कौन-सा फूल तोड़ना होता है। बागानका माली ही जानता है।' हम जब फूल तोड़ने जाते, तब वे वहीं पर उपस्थित रहते। कहते—'नहीं, इसे मत तोड़ो, यह और दो दिन रहेगा। हाँ, यह फूल अच्छी तरहसे खिला है, इसे तोड़ सकते हो। तुमलोग अभी तक नहीं समझ सके कि फूल पूर्णरूपसे खिला है या नहीं?' ऐसा कहकर वे हमपर गुस्सा होते थे। वे कहते—'जब समझोगे कि किस फूलको और एक दिन रखने पर वह झड़कर गिर जाएगा, तभी उसे तोड़ना होता है।' और भी कहते—'भगवान्‌को कोई भी फूल तोड़कर देनेपर वे प्रसन्न नहीं होते। जिस प्रकार ठाकुरजीको पके हुए फल दिये जाते हैं, उसी प्रकार उन्हें प्रस्फुटित फूल देने होते हैं—आधा खिला हुआ फूल नहीं। पुनः यह फूल-बागान कृष्णका है, यहाँ ठाकुर-ठाकुरानी आते हैं, बैठते हैं, घूमते हैं, इसलिए पौधेमें सब समय कुछ-न-कुछ फूल रहने चाहिए, कभी भी पौधेको सम्पूर्ण खाली करके फूल नहीं तोड़ने चाहिए।'

यथार्थ माली

श्रील गुरुमहाराज यथार्थमें माली थे। *'माली हञा करे सेइ बीज-रोपण।'* गुरुतत्त्वकी क्यों मालीके साथ तुलना की गयी है, उसे गुरुमहाराजको देखने पर समझ सकते हैं। हमारे प्रस्फुटित न होनेतक गुरुमहाराज हमें ठाकुर-ठाकुरानीके निकट अर्पण नहीं करेंगे। अर्द्ध-प्रस्फुटित अवस्थामें रहने तक हमारे भाग्यमें वह सुयोग उपस्थित नहीं होगा।

—श्रीभक्तिवेदान्त निष्किञ्चन

तुमलोगोंके एक ही परमगुरुदेव हैं, दो नहीं

एक बार मैंने गुरुमहाराजसे पूछा—'गुरुमहाराज! हमारे परमगुरुदेव दो जन हैं, ऐसी ही है न?' सुनकर वे विस्मित होकर बोले—'दो जन परमगुरुदेव! कौन कौन बोलो तो?' कुछ संकोचपूर्वक मैंने कहा—'एक तो श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज और दूसरे श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद।' मेरे मनमें बड़ी इच्छा होती कि श्रील प्रभुपादको भी परमगुरुदेव बोलूँ, क्योंकि उनसे ही तो मेरे गुरुमहाराजने हरिनाम प्राप्त किया था। आह! यदि ऐसा बोल सकता था, तो अधिक गर्वकी बात होती। घटनाके अनुसार तो बोल ही सकता हूँ, परन्तु गुरुमहाराजकी अनुमति न मिलने पर अनर्थ हो जाएगा, यही भय है। यह सोचकर मैंने गुरुमहाराजके निकट इस विषयका उत्थापन किया।

मेरे प्रश्नको सुनते ही वे मेरी भावनाको समझ गये। उन्होंने शान्त भावसे कहा—"तुमलोगोंके एक ही परमगुरुदेव हैं, दो नहीं। एक घटनाको लेकर तुम ऐसा सोच रहे हो, परन्तु वही यथेष्ट नहीं है। प्रभुपाद तुमलोगोंके परमगुरुदेव नहीं हो सकते, क्योंकि मैं ही उनको 'गुरुपादपद्म' के आसन पर बैठा नहीं सका। मेरे गुरुपादपद्म हैं—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, और उनके गुरुपादपद्म हैं—श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर। इससे अधिक और कोई बात नहीं है। इस बातको मैंने स्वयं ही गुरुमहाराजके निकट स्पष्ट कर दिया था।" ऐसा कहकर गुरुमहाराजने अपने जीवनकी एक घटना सुनायी।

"उस समय चुँचुड़ाके 'उद्धारण गौड़ीय मठ'में कोलकातासे प्रेस स्थानान्तर हुआ था। मैं एक टेबल लेकर प्रेसके लिए प्रबन्धादि प्रस्तुत कर रहा था, और उसीमें आविष्ट था। पासमें गुरुदेव(श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज) अपनी आराम-चैयरमें विश्राम कर रहे थे। आस-पास कोई नहीं था। इतनेमें गुरुदेवको कहते हुए सुना—'ओ गुरुभाई!' सुनकर मैंने सोचा कि 'देखूँ, गुरुदेव उनके किस गुरुभाईको बुला रहे हैं, उनको बुलाकर ही कार्य आरम्भ किया जाए।' ऐसा सोचकर मैंने गुरुदेवसे पूछा—'कौन आये हैं गुरुदेव? आप किसे बुला रहे हैं?' उत्तरमें उन्होंने कहा—'कोई नहीं आया। मैं तुमको ही बुला रहा हूँ।' मैंने आश्चर्यपूर्वक कहा—'मैं आपका गुरुभाई हूँ!!' उन्होंने कहा—'क्यों नहीं? तुम्हारा तो प्रभुपादसे ही 'हरिनाम' हुआ है। इसलिए असलमें तो तुम प्रभुपादके शिष्य हो।' यह बात सुनकर मुझे बहुत कष्ट हुआ। मैंने कहा—'प्रभुपादसे मेरा हरिनाम हो सकता है, परन्तु मैं उनका शिष्य नहीं हूँ। प्रभुपादके शिष्य आप हैं एवं आपका शिष्य मैं हूँ। मैंने कदापि अपनेको प्रभुपादके आश्रितरूपमें नहीं सोचा है। मेरे आश्रय केवल आप हैं, मात्र इसे ही मैं विश्वास करता हूँ। अब आप मुझे गुरुभाई कह रहे हैं, क्या इसका अर्थ कि मैं आपका आश्रित नहीं हूँ? तब तो मैं निराश्रय हो गया। मैंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके प्रबन्धमें देखा है—मन्त्रदीक्षा-गुरु ही वास्तवमें श्रीनामगुरु हैं। अतः

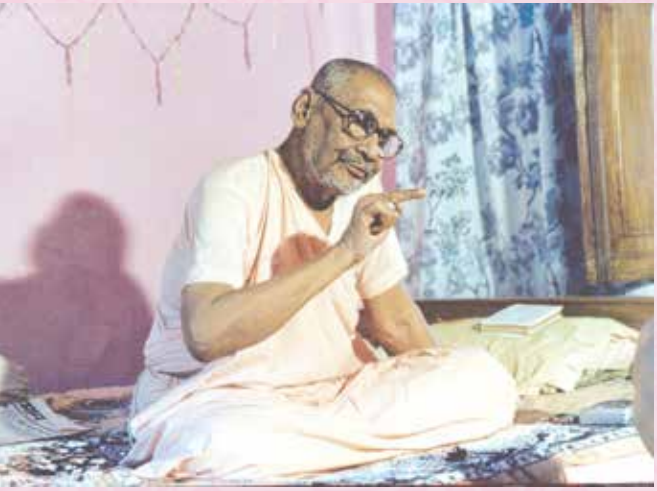

आप ही मेरे श्रीनामगुरु हैं। इसलिए मैं सब प्रकारसे आप ही का शिष्य हूँ। अब गुरुभाई कहकर आप मुझ क्यों आपने आश्रयसे धकेल देना चाहते हैं? गुरुदेव, आपकी इस बातसे मुझे खूब कष्ट हुआ।' ऐसा कहकर मैं कार्यके टेबल पर दोनों हाथोंके बीचमें सिर रखकर रोने लगा। तब गुरुदेव कुर्सी छोड़कर मेरे पास आये और मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए कहने लगे—'मैं तुम्हारे साथ थोड़ा हास-परिहास कर रहा था। तुम तो मेरे ही शिष्य हो। अच्छा, मैं तुमको और कभी भी गुरुभाई नहीं बोलूँगा। तुम प्रभुपादके शिष्य नहीं हो, मेरे ही शिष्य हो, मेरे ही आश्रित हो। अब और मन खराब मत करो।' इस घटनाको मैंने क्यों तुमसे कहा, आशा करता हूँ तुम अब समझ गये होगे।"

"अतएव तुमलोगोंके परमगुरुदेव दो नहीं हैं, एक ही हैं और वे हैं—जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज।"—गुरुमहाराजने उनके दृढ़ सिद्धान्तकी घोषणा की।

सुनकर मैं स्तम्भित हो गया। गुरुमहाराजकी कैसी अद्भुत गुरुनिष्ठा थी! श्रील प्रभुपादसे उनके हरिनाम प्राप्तिकी बात वे किसी सभामें या किसीके पास भी प्रकाश नहीं करते थे। अपनेको प्रभुपादका शिष्य मानने पर श्रील केशव गोस्वामी महाराजके साथ अपनेको एक ही स्तरका मानना हो जाता है, इसलिए उन्होंने कदापि ऐसा अभिमान नहीं किया। परमगुरुदेवने गुरुमहाराजके साथ जो परिहास किया था, वास्तवमें मुझे लगता है कि वह हास-परिहास नहीं, अपितु एक परीक्षा थी। परमगुरुदेव उस परिहासके माध्यमसे गुरुमहाराजकी अन्तर्निष्ठा देखना चाह रहे थे। कारण—गुरुमहाराजने श्रील प्रभुपादसे हरिनाम प्राप्त किया था, इसलिए वे प्रभुपादके शिष्य हैं—श्रील केशव गोस्वामी महाराज द्वारा उनको केवल दीक्षामन्त्र देनेके कारण प्रभुपादके शिष्यको अपना शिष्य सोचना उचित है या नहीं, इसकी परीक्षा करनेके लिए उनको गुरुभाई कहकर परिहास किया था। इस परिहाससे ही उनको उनकी अन्तर्निष्ठाका प्रमाण मिल गया—उनका 'सज्जनसेवक' शत-प्रतिशत उनका ही शिष्य है। अतः गुरुमहाराजके गुरुदेव एक ही हैं, दो नहीं हो सकते, इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है।

मितव्ययिता और विलासिता वर्जनकी शिक्षा

श्रील गुरुमहाराज हमें सदा मितव्ययिता [reasonable spending] की ही शिक्षा देते थे, किन्तु कृपणताकी नहीं। कुछ भी खरीदनेके लिए जानेपर वे सदैव कहते थे—वस्तु अच्छी होनी चाहिए, परन्तु इसका मतलब उच्च मूल्यकी नहीं। 'जितनी मीठी, उतना गुड़'—इस विचारसे नहीं, मध्यम स्तरकी होनी चाहिए। गुरुमहाराज कहते थे—'साधु व्यक्तिका जीवन-निर्वाह इस प्रकार होना चाहिए, जिससे लोग उसको भोगी न मान बैठें। हम लोगोंको plain living सीधा-सादा जीवन यापन करनेकी शिक्षा देते हैं, और यदि हम

ही उसका लंघन करते हैं, तब वे हमपर ही कटाक्ष करेंगे।' उनकी कपड़े धोनेके लिए साबुन व्यवहार करनेकी शिक्षा बड़ी अद्भुत थी। कपड़ेको दो-तीन बार तय करके उसके ऊपर साबुन (टिकिया) घिसने पर कम साबुनसे ही काम हो जाएगा। सम्पूर्ण कपड़े पर साबुन घिसने पर बहुत साबुन लगता है। कमरोंमें बिजलीका व्यवहार करते समय अनावश्यकके light, fan आदि चलते हुए देखने पर 'कम्पनीका खर्चा बचाओ' कहकर तुरन्त उसको बन्द करनेके लिए बोलते थे। शिलिगुड़िके श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठमें रहते समय एक दिन गुरुमहाराजके पास समाचार आया कि गोविन्द महाराज बिजलीका खर्चा बचानेके लिए मीटर-बॉक्समें दो-नम्बरी कुछ कर रहे हैं। साथ-ही-साथ उन्होंने गोविन्द महाराजको बुलाया। गुरुमहाराजके पूछने पर गोविन्द महाराजने उसे स्वीकार किया। तब गुरुमहाराजने कहा—'मैं इसी क्षण तुम्हारे इस मठको छोड़कर चला जाऊँगा।' गोविन्द महाराजने तुरन्त गुरुमहाराजको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामकर कहा—'मैं और कभी यह सब नहीं करूँगा गुरुदेव, कान पकड़ रहा हूँ। परन्तु आप यहाँसे मत जाएँ।' तब गुरुमहाराजने गोविन्द महाराजको तीन बार शपथ करवायी। गुरुमहाराजने कहा—'यह कैसी बात है? तुमलोग बिजली उपभोग करोगे, और उसका मूल्य नहीं दोगे? विलासिता कम करो। सभी सचेतन हो जाओ, बिना कारणके क्यों कमरेमें light, fan चलाते हो? प्रत्येक कक्षमें fan चलानेकी क्या आवश्यकता है? एक बड़े हॉलमें बीचमें एक fan चलेगा, सभी लोग उसके चारों ओर बिस्तर लगाकर सो जाना। क्या मठवासियोंके लिए विलासिता शोभनीय है? कष्ट नहीं सहने पर कैसा मठवास?' उसी दिनसे हमलोग बड़े हॉलमें एक साथ रातको सोते थे।

—श्रीभक्तिवेदान्त तपस्वी

मठवासियोंको सर्वक्षण प्रस्तुत रहना होगा

कलियुगमें जीवोंका कल्याण करनेके लिए श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार अति आवश्यक है, इसी प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिए मठ-मन्दिरोंकी स्थापना हुई। गुरु महाराज कहते थे—"मठवासियोंको द्वितीय मिलिट्रीकी भाँति प्रतिदिन प्रातःकाल शय्या त्यागकर बिस्तर बाँधकर रखना होगा तथा प्रचारके लिए कर्तृपक्ष (authority)का आदेश होते ही उन्हें तत्क्षणात् यात्रा आरम्भ करनी होगी। श्रील गुरुमहाराज 'मिलिट्री' शब्दका ही उल्लेख करते थे। जिस प्रकार 'मिलिट्री' सर्वदा देशके लिए निवेदित-प्राण होती है तथा देशके लिए किसी भी समय किसी भी समस्याके समाधानके लिए कूद पड़नेके लिए तैयार रहती है, उसी प्रकार मठवासियोंको भी हरि-गुरु-वैष्णवोंके लिए निवेदित-प्राण होना होगा एवं मिलिट्रीकी ही भाँति भगवत्सेवा, प्रचार आदिके लिए सर्वक्षण प्रस्तुत रहना होगा।

क्या मैं आपकी सन्तान नहीं हूँ?

एक बार वर्द्धमानमें चित्तरञ्जन रेलवे स्टेशनसे यात्राके समय ट्रेनके विलम्ब होनेके कारण श्रील गुरुमहाराज नृसिंह प्रभुके साथ दोपहर ३ बजे हमारे गुरुभ्राता श्रीजगन्नाथ झाके घरमें उपस्थित हुए। अपने घरमें श्रील गुरुमहाराजका दर्शन करते ही जगन्नाथ प्रभु तुरन्त रसोईके कार्यमें लग गये। गुरुमहाराज रसोईघरमें आकर बोले—"मुझे बहुत भूख लगी है और तुमने रसोई बनानी आरम्भ कर दी है। क्या तुम्हारी हाँडीमें

कुछ भी नहीं है? उसमें जो कुछ भी है, वही मुझे दे दो, उसीसे मैं अपनी भूख शान्त कर लूँगा, क्योंकि मुझे और भूख सहन नहीं हो रही है।" यह सुनकर जगन्नाथ प्रभु बोले—"गुरुमहाराज! हम लोगोंने प्रसाद पा लिया है। अतः अब जो अवशिष्ट बच गया है, उसे हम आपको कैसे दे सकते हैं?" इसके उत्तरमें गुरुमहाराज बोले—"क्यों, क्या मैं आपकी सन्तान नहीं हूँ, आपलोग मुझे पराया क्यों समझते हैं?" गुरुपादपद्म अपने आश्रितोंको अपना परिवार तथा स्वयंको उनके परिवारका ही सदस्य मानते थे। वे स्वयंको 'मैं तुम्हारा गुरु हूँ', ऐसा भाव कभी भी प्रकाशित नहीं करते थे। वास्तविक शिक्षक शिक्षार्थीके बाहर नहीं, अपितु उसके अन्तरमें स्थान ग्रहणकर ही शिक्षा दान करते हैं।

80-G करनेका प्रस्ताव

एकबार एक मठवासीने श्रील गुरुमहाराजके समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि मठकी आर्थिक उन्नतिके लिए '८०-जी' करना चाहिए। श्रील गुरु महाराजने पूछा—'८०-जी' के द्वारा मठकी कौन-सी श्रीवृद्धि(उन्नति) सम्भव होगी? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा मठवासियोंकी बुद्धिभ्रष्ट होनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी भला नहीं होगा। परिणामस्वरूप यह प्रचारकार्य बन्द होनेकी व्यवस्थाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसके द्वारा केवल विषयी व्यक्तियोंका दूषित अन्न ग्रहण करनेका मार्ग ही प्रशस्त होगा। *"विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन। मलिन मने नाहि हय, कृष्णेर स्मरण॥" "वैष्णववृत्ति नहे भिक्षा मागि खाय। छले कृष्णतत्त्व-कथा जीवेर शिखाय॥"*

अर्थात् विषयी व्यक्तिका अन्न खानेसे मन मलिन हो जाता है तथा मलिन मनसे कृष्णका स्मरण नहीं हो पाता। भिक्षा माँगकर खाना वैष्णववृत्ति नहीं है, वैष्णवजन तो भिक्षाके छलसे कृष्णतत्त्वकी कथाओंकी शिक्षा प्रदानकर जीवोंका कल्याण करते हैं।

मङ्गलाकांक्षी अभिभावक पिता

एक बार कोलकाताके मठमें एक गृहस्थ गुरुभ्राता दक्षिण २४ परगणा निवासी अमिय मास्टरजी (प्राथमिक शिक्षक)ने श्रील गुरुमहाराजके दर्शनकर उनको प्रणामी दी। प्रणामी ग्रहण करते हुए गुरुमहाराजने उससे पूछा—'महीनेमें कितना वेतन पाते हो?' उन्होंने उत्तरमें कुछ कहा। गुरुमहाराजने पुनः पूछा—'महीनेमें कितना खर्च होता है? संसार चलाकर प्रति मासमें कुछ बचता है या नहीं?' उत्तर—'कोई निश्चित नहीं गुरुदेव।' गुरुमहाराजने कहा—'गृहस्थ भक्तके लिए आनेवाले दिनोंके लिए सोचनेकी आवश्यकता है। तुम नौकरी करते हो। मासमें तुम्हारे पास केवल एक बार अर्थ आता है। उसी अर्थको बहुत सोच-विचारकर खर्च करना होगा। त्यागी साधुओंके लिए भगवद् इच्छासे

कभी चना तो कभी पूड़ी-पकवान और मिठाई। तुम्हारी ऐसी अवस्था नहीं है। इसलिए तुम्हारे इस अर्थसे मैंने कुछ लिया, बाकी तुम्हारे पास जमा रखा। बादमें आवश्यकता होनेपर तुमसे माँग लूँगा।' श्रीगुरुमहाराज शिष्यवित्त-अपहारक गुरु नहीं थे। वे त्यागी, गृहस्थ, सभीके परम मङ्गलाकांक्षी अभिभावक पिता थे।

ऐश्वर्य बढ़ने पर माधुर्य लुप्त हो जाता है

कोलकाता मठकी जमीनको श्रील गुरुमहाराजने ईस्वी सन् १९८१ में खरीदा था। वहाँपर जो मकान था, उसमें चारों ओर asbestos की छतके कमरे थे और बीचमें उठा हुआ स्थान था। उस मकानमें दिन बिताते समय एक दिन श्रील गुरुमहाराजने हम सबको बुलाया और कहा—'तुमलोगोंका कष्ट मैं समझ सकता हूँ। यह स्थान छोटा है, अन्य कहींपर बड़ी जगहके लिए चेष्टा कर रहा हूँ। परन्तु क्या करूँ, पैसा है तो स्थान नहीं है, स्थान है तो पैसा नहीं हैं। इसलिए एक काम करो, इस मकानको तोड़कर इसमें जितना सम्भव है, वही बनाओ, बादमें भगवान्‌की इच्छासे यदि कुछ होता है, तब देखा जाएगा।' यह बात कहनेके बाद गुरुमहाराजने सबके लिए एक गुरुत्वपूर्ण बात कही—'परन्तु तुमलोगोंको एक बात कहता हूँ, तुमलोगोंने यहाँपर जो १० वर्ष तक परस्पर स्नेह-प्रीतिके साथ दिन बिताये हैं, इस स्थानपर जब बड़ी building तैयार होगी, नया-नया ऐश्वर्य आयेगा, तब वह स्नेह-प्रीति नहीं रहेगी। जगत्‌में ऐश्वर्य बढ़ने पर माधुर्य लुप्त हो जाता है। इसलिए *'अन्तरे कर निष्ठा, बाह्ये लोक-व्यवहार'*—इस भावको यदि रख सकते हो, तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है। गोस्वामीगण एक वृक्षके नीचे एक रात ही बिताते थे, दूसरी रात नहीं। स्थान, काल, पात्रके अनुसार चलना होता है। शरीर रहेगा building में, और मन रहेगा साधन-भजनमें।' श्रील गुरुमहाराजकी उन सभी बातोंको आज हम अनुभव कर रहे हैं। हमलोग दाँत रहते दाँतका महत्त्व समझ नहीं पाये।

हम भक्तिके स्कूलमें भर्ती मात्र हुए हैं

एक बार कोलकाताके मठमें श्रील गुरुमहाराजने हरिकथा परिवेशनके अन्तमें समस्त मठवासी और गृहस्थ श्रोताओंके उद्देश्यसे कहा—"हम जानते हैं कि गौड़ीय मठ भक्तिका स्कूल है। परन्तु मैं तो इस स्कूलमें कर्मी, ज्ञानी, योगी, भक्त—समस्त प्रकारके छात्र-छात्राओंको देख रहा हूँ। *ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव। गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥* पूर्व-पूर्व जन्मके संस्कार और सुकृतिके अनुसार हम वर्तमान भक्तिके स्कूलमें केवल भर्ती हुए हैं। परन्तु जबतक हम इस भक्ति-स्कूलके पठन-पाठनमें मनोनिवेश कर उसमें सुप्रतिष्ठित नहीं हो पाते हैं, तबतक हम यह नहीं कह सकते कि हम शुद्धभक्ति-प्रतिष्ठानके छात्र हैं। वास्तवमें जगत्‌में प्रति क्षण विभिन्न परिस्थितियोंमें उस शास्त्रीय सिद्धान्त-ज्ञानका प्रयोग और अनुशीलन न कर पानेपर इस भक्तिके स्कूलमें भर्ती होना भी व्यर्थ हो जाता है।" यह सुनकर एक श्रोताने कहा—'गुरुमहाराज, मेरा तो इस जन्ममें हरिभजन नहीं हुआ, आप मुझे कृपा करें कि आनेवाले जन्ममें मनुष्यजन्म पाकर आपके श्रीचरणोंके आश्रयमें भजन कर सकूँ।' इसके उत्तरमें श्रील गुरुमहाराजने कहा—"ऐसा सोचना आलसी, बहानेबाज छात्रका लक्षण है। इसी जन्ममें

ही मैं सैंकड़ो बाधा-विपत्तियोंके बीच फर्स्ट-क्लास फर्स्ट होऊँगा, गुरु-वैष्णवकी कृपाप्राप्तिके लिए यत्न करते हुए भगवान्‌को प्राप्त करूँगा। *'षड़ङ्ग शरणागति हइबे याहार। ताहार प्रार्थना शुने श्रीनन्दकुमार॥'* पुनः मनुष्यजन्म मिलेगा, इसकी क्या guarantee है? फिर मनुष्यजन्म होनेपर भी क्या लाभ है, जो व्यक्ति इस मनुष्य जन्ममें सुअवसर पाकर भी हरभजन नहीं कर सकता, आनेवाले मनुष्यजन्ममें क्या निश्चयता है कि वह व्यक्ति हरिभजन कर पायेगा? समस्या, प्रतिकूलता समस्त जन्मोंमें रहेगी, अपितु आनेवाले जन्मोंमें युगके प्रभावसे वह बढ़ती जाएगी। इसलिए इसी जन्ममें हरिभजनका जो सुयोग मिला है, यही श्रेष्ठ सुयोग है, इसे ही कार्यमें लगाओ।'

—श्रीसज्जनानन्द ब्रह्मचारी

बिना ममताके सेवा करनेपर कर्तव्यका पालन होता है, सेवा नहीं

(५/३/९१) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"साधुवेश धारणकर, मठवासी होकर जो कामना-वासना करते हैं, भोगकी इच्छा करते हैं या भोग करते हैं, उनका कदापि मङ्गल नहीं होता। संख्यापूर्वक नामग्रहण, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंकी चर्चा आदिसे साधुसङ्ग और भगवत् सङ्ग होगा। जबतक मठकी प्रत्येक वस्तुको गुरु-वैष्णव-भगवान्‌का नहीं समझेंगे, तबतक सेवा नहीं होगी। बिना ममताके सेवा करने पर कर्तव्यका पालन होता है, सेवा नहीं होती। 'श्याम रखूँ या कुल रखूँ' इस नीतिको अपनाने पर कदापि हरि-गुरु-वैष्णवोंमें प्रीति या हरिभजन नहीं होता है। ईर्ष्या-हिंसा-परायण व्यक्तिकी बुद्धिमें दोषके कारण अनेक निश्चित सम्भावनाएँ भी वास्तवमें परिणत नहीं होतीं। मूर्ख, जिद्दी, शैतान, अर्वाचीन लोगोंकी गुटबाजीसे बहुत प्रकारसे प्रगतिमें बाधा होती है। बड़े-बड़े साधु महात्मा

हों या साधारण व्यक्ति, अन्याय करने पर किसीकी भी रिहाई नहीं है। भगवान्‌के लिए खर्च करने पर कदापि अभाव नहीं होता है, भगवान् लाकर देते हैं, विश्वास रखो, किसी प्रकारका अभाव नहीं होता।"

यह मेरी कल्पनाके बाहर था

एक समय मैंने गुरुमहाराजसे कहा—गुरुमहाराज! मैं घर जाऊँगा। गुरुमहाराज बोले—'क्या मठमें आकर कोई घर जाता है?' मैंने कहा—मैं आपको कुछ ग्रन्थ देना चाहता हूँ। मेरे यह कहते ही गुरुमहाराजने मुझे आलिङ्गन कर लिया तथा कहने लगे—"यह मेरे बहुत जन्मोंका सौभाग्य है।" यह देखकर मैं अवाक् रह गया तथा मन-ही-मन सोचने लगा—ग्रन्थोंके प्रति इतनी प्रीति! ग्रन्थका

तात्पर्य है भगवत्-कथा। ऐसी भगवत-कथाके प्रति गुरुमहाराजकी कैसी आसक्ति थी। इसीलिए उन्होंने मुझे उपहारमें आलिङ्गन प्रदान किया। यह मेरी कल्पनाके बाहर था। मैं उसके बाद पूर्वाश्रमसे श्रीचैतन्य-भागवत, श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीहरिभक्तिविलास, श्रीमद्भागवत (१-१२) इत्यादि ग्रन्थ लेकर आया तथा कलकत्ता मठमें सत्यराज प्रभुको दे दिये।

शिक्षागुरुवर्गका आनुगत्य गुर्वानुगत्यका ही अङ्ग है

(३/२/९१) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"शिक्षागुरुवर्गका आनुगत्य गुर्वानुगत्यका ही अङ्ग है। व्रजमें राधाकृष्णकी सेवा प्राप्त करनेके लिए जिस प्रकारसे शिष्यके लिए श्रीगुरुदेवकी भक्ति करना कर्तव्य है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेवके सतीर्थ सहित अन्यान्य शिक्षागुरुवर्गकी भक्ति करना भी कर्तव्य है। मन-ही-मन भी यदि वैष्णवोंकी निन्दा या उनके विषयमें कुछ अनुचित विचार किया जाय, तो अवश्य ही इससे अपराध हो जाता है—अतः सावधान रहना चाहिए। सहन करना मठवासीका महान् गुण है। किसीकी बातोंपर कान न देकर अपनी सेवा करते रहना चाहिए, यदि ऐसा नहीं करेंगे तो झगड़ा आदि होगा। इससे अपने ही साधन-भजनमें विघ्न आयेगा। कृष्णके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है—इसे जाने बिना भजन-कार्य आरम्भ नहीं होगा। विरोध भाव रहनेपर भजन नहीं होगा। सत्सङ्ग आवश्यक है, परन्तु इसके साथ ही असत्सङ्गका त्याग भी करना होगा।"

मैं उपदेशक नहीं हूँ

(२/३/९१) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"किसी वैष्णव या सिद्ध महात्माके देहत्याग करनेपर, उनको दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए तथा उनकी परिक्रमा करनी चाहिए। उन्हें स्पर्श करनेसे कोई अपवित्र नहीं होता। जो अर्चन करता है, केवल उसे ही स्मृतिशास्त्रके अनुसार स्नान करना होगा, अन्य किसीको भी स्नान करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं उपदेशक नहीं हूँ, मैं अहङ्कारी नहीं हूँ—भगवान्, गुरुवर्ग, गोस्वामीवर्ग तथा शास्त्रोंने जैसा कहा है, मैं उसकी ही चर्चा कर रहा हूँ—ऐसा भाव रखना होगा। जो मठमें भजन करनेके लिए आकर रुपया-पैसा सञ्चय करते हैं, समझ लेना चाहिए उनकी गुरु-वैष्णव-भगवान्में आस्था नहीं है। भगवान्में भक्ति रखो, भजन-साधन करो, हरिनाम करो, ग्रन्थ पढ़ो, सेवा कार्य करो—भगवान् निश्चय ही शुभदृष्टि तथा कृपा करेंगे। बस तुम लोग भगवान्की सेवा सुष्ठुभावसे करते जाओ, भगवान् अपनी सेवाकी वस्तुओंकी व्यवस्था स्वयं ही कर लेंगे।"

बद्धजीवसे तो भूल होगी ही

(१७/७/९२) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"मठवास करनेपर भी यदि कोई काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यके अधीन रहता है, तो कभी भी उसका भजन-साधन या गुरु-वैष्णवसेवा कुछ भी नहीं होगा। यदि कोई मान-अभिमानकी चिन्तामें मग्न रहता है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसा होनेपर तुम स्वयं मरोगे तथा अपने ऊपर वाले गुरुदेवको भी मारोगे। इसीलिए तुम भी बचो तथा गुरुदेवको भी बचाओ। माथा ठण्डा रखकर सबके साथ मिल-जुलकर

भजन करो, सेवा कार्य करो तभी मङ्गल होगा—यदि ऐसा नहीं हुआ तो मङ्गल कहाँ? इससे तो संसारमें जाना ही अच्छा है। बद्धजीवसे तो भूल होगी ही, किन्तु उसे मनमें रखना उचित नहीं है, तुरन्त ही उस भूला देना चाहिए।"

'चैत्य-वृक्ष'

(२६/७/९२) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"बेल, आँवला, अरणि, वट, अश्वत्थ, हरितकी, नीम—इन सब वृक्षोंमें देवताओंका अधिष्ठान होता है। इन्हें 'चैत्य-वृक्ष' कहा जाता है। कोई गृहस्थ इन वृक्षोंको होम-यज्ञ आदिके अतिरिक्त किसी अन्य कार्यमें व्यवहार नहीं कर सकता। किन्तु मठवासी लोग ठाकुरजीकी रसोईके लिए भी इनका व्यवहार कर सकते हैं।"

अपने अधिकारको जानकर ही प्रश्न करना चाहिए

(२/९/९२) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"यदि कोई राधातत्त्वकी आलोचनाका अधिकारी हो, तो श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पादका राधारससुधानिधि, गर्गसंहिता, श्रीजयदेवके ग्रन्थ आदिकी आलोचना करनेपर राधातत्त्वके विषयमें सुन्दर रूपसे जाना जा सकता है। उन ग्रन्थोंमें सुष्ठुरूपसे राधातत्त्वका वर्णन किया गया है। यदि कोई राधारानीके समबन्धमें कोई प्रश्न करना चाहता है, तो उसे अपने अधिकारको जानकर ही प्रश्न करना चाहिए। मैं उत्तर देनेकी चेष्टा करूँगा। यह तत्त्व सर्वत्र चर्चाका विषय नहीं है। इसीलिए व्यासदेवने श्रीमद्भागवतमें राधातत्त्वको गुप्तरूपसे वर्णन किया है—**"अन्याराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः"** (भाः१०/३०/२८)। किन्तु श्रीजयदेवने राधातत्त्वके विषयमें स्पष्टरूपसे बोल दिया—"स्मरगरल-खण्डनं" (गीतगोविन्द) इत्यादि।"

इस जगतमें कोई किसीका भला नहीं देख सकता।

(२७/१०/९३) श्रील गुरुमहाराजकी उक्ति—"जो जितना आदर-स्नेह पानेका अधिकारी है, उसे उससे अधिक दो। कम देनेपर कृपण कहलाओगे—ऐसा न कर पाने पर मरोगे। 'मुझे किसीने सम्मान नहीं दिया, मेरा नाम प्रचार नहीं हुआ, मैं दीन-हीन हूँ'—ये सब बातें कहनेकी क्या आवश्यकता है? जहाँपर जैसी व्यवस्था है, वहाँपर वैसे ही रहना चाहिए। अपनेसे उन्नत व्यक्तिका सङ्ग करना चाहिए। अपनेसे निम्न व्यक्तिका सङ्ग कदापि नहीं करना चाहिए। इस जगतमें कोई किसीका भला नहीं देख सकता। इस संसारमें निन्दुक लोग ही अधिक हैं।"

दीपावली कबसे है

(२७/१०/९९) श्रील गुरुमहाराजकी उक्ति—"दीपावली कबसे है—कार्तिककी कृष्ण त्रयोदशीसे दीपावली आरम्भ होती है। त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, प्रतिपद—ये चार दिन दीपावली होती है। त्रयोदशीको यमदीप दान होता है। द्वारके बाहर सूर्यपुत्र-पुत्री, यम-यमुनाके उद्देश्यसे १४ प्रदीप दान करने चाहिए।"

गुरु-वैष्णवोंका सान्निध्य ही 'स्वदेश' है

(१३/११/९९)श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"गुरु-वैष्णवोंका सान्निध्य ही 'स्वदेश' है। जहाँ उनका सान्निध्य नहीं है, वही 'विदेश' है। जो छः ऋण हैं, उनका शोधन करना होगा। यदि साधन-भजन सम्पूर्ण हो जाता है, तो व्यक्ति समस्त ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। गुरु-वैष्णवोंकी सेवा सीखनी होगी तथा सीखानी होगी।"

आपलोग सदाचारका पालन करते हुए हरिभजन करें

(९/१२/९९)श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"आपलोग वैष्णवीय सदाचार पालन करें, सत्शास्त्रोंका अध्ययन करें। नामकी इतनी महिमा जानकर भी आप लोगोंकी नामके प्रति असावधानी—यह अच्छा नहीं है। आप लोग नाम कर रहे हैं, तत्त्वविचार भी जानते हैं, किन्तु सदाचारका पालन नहीं कर रहे हैं। आचरणमें इधर-उधर कर रहे हैं—इससे कुछ नहीं होगा। बहुत हरिकथा भी सुनी, बहुत अच्छी वक्तृता भी दी—इससे भी कुछ नहीं होगा। मेरा अनुरोध है, आपलोग सदाचारका पालन करते हुए हरिभजन करें।" मैंने पूछा—"वृन्दावनमें सेवाकुञ्जमें पान-भोग लगाया जाता है। अनेक गौड़ीय वैष्णव उस प्रसादको ग्रहण करते हैं।" सुनकर गुरुमहाराज कहने लगे—"वे गौड़ीय वैष्णव नहीं हैं। वह केवल दिखावा है। ठाकुरको ताम्बुल देना चाहिए, किन्तु स्वयं उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए।"

हरिनाम बेगारठेला (duty) नहीं है

(१०/१२/९९) श्रील गुरुमहाराजने अपनी हरिकथामें कहा—"हरिनाम बेगारठेला (duty) नहीं है। प्रीतिपूर्वक अपराधशून्य होकर नामग्रहण करना होगा। हम चाहे कितना ही कष्ट क्यों न करें, यदि शास्त्रोंके विचारानुसार न चलें तो वहाँ बेगारठेला (duty)की भाँति हरिनाम होता है—कृष्णप्रीतिमूला सेवा, प्रीतिपूर्वक नाम नहीं होगा। भक्तका ऐकान्तिक साधन तथा भगवत्कृपा—इन दोनोंके मिलनसे सिद्धि प्राप्त होती है। यदि मेरी चेष्टा न रहे, तो कृपा होगी कैसे? भगवान् सर्वविचारक तथा अतिविवेचक हैं। वे विचार करके ही कुछ भी देते हैं। हरिनाम साक्षात् भगवान् हैं। रोते-बिलखते हुए नाम करनेपर वे सब फल प्रदान करते हैं। आप लोग मिलजुलकर रहें तथा हरिभजन करें—चाहे समाजमें रहें, संसारमें रहें या मठ-मन्दिरमें रहें।"

—श्रीनवद्वीपदास ब्रह्मचारी

आप कौन-से राज्यमें थे?

लगभग ईस्वी सन् १९९० की बात है। मैं श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठमें रह रहा था। श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज उस मठमें कुछ दिन ठहरे थे। उन दिनोंमें परमपूज्यपाद श्रील नारायण गोस्वामी महाराज श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठसे प्रातः morning walkके बाद श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठमें आते एवं श्रील गुरुमहाराजके साथ इष्टगोष्ठी करते। वृन्दावनसे कोलकाता लौटनेके दिन सुबहकी घटना है। श्रील गुरुमहाराज बिस्तर पर बैठे झरोखेसे श्रीयमुनाकी ओर निहारते हुए हरिनाम कर रहे थे। टूण्डला स्टेशनसे ट्रेन पकड़नी थी। टूण्डला जानेके लिए गाड़ी आ गयी थी। श्रील नारायण गोस्वामी महाराज गुरुमहाराजको यह बात बतानेके लिए 'महाराज, महाराज' सम्बोधन करते हुए कई बार आवाज देने लगे, किन्तु कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। तब वे गुरुमहाराजके कानके पास आकर बोले—'महाराज, महाराज!' तब भी कोई प्रतिक्रिया न पाकर उन्होंने गुरुमहाराजको थोड़ा-सा स्पर्श किया। स्पर्श करते ही गुरुमहाराज चौंक पड़े, जैसे किसी समाधिमें थे और वह भङ्ग हो गयी। गुरुमहाराजको चौंकते हुए देखकर श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कहा—"मैं कबसे आपको बुला रहा हूँ, आप सुन नहीं पा रहे हैं। कौन-से राज्यमें थे?" तब गुरुमहाराजने कहा—"श्रीकृष्ण और बलराम यमुनाके तटपर सखाओंके साथ असंख्य गायोंको लेकर विचरण कर रहे हैं, ये सब दर्शन कर रहा था। इसीलिए हो सकता है आपकी आवाज सुन नहीं सका।" सुनकर श्रील नारायण गोस्वामी महाराजने कहा—"अहो! आप भगवत् लीला दर्शन कर रहे थे और मैंने बाधा पहुँचायी! मेरा अपराध हो गया है, क्षमा कीजिए।" गुरुमहाराजने कहा—"नहीं, कोई बात नहीं। आप क्यों बुला रहे थे?" श्रील महाराजने कहा—"टूण्डला जाकर आज आपको ट्रेन पकड़नी है। गाड़ी आ गयी है। चलिए, प्रसाद सेवा कीजिए।"

इस घटनाको देखकर मैंने सोचा कि यदि श्रील नारायण गोस्वामी महाराज गुरुमहाराजको नहीं बुलाते, तब गुरुमहाराज उस लीलादर्शनमें ही मग्न रहते, ट्रेन पकड़ना नहीं हो पाता। परन्तु श्रील महाराजके बुलानेसे ही उनके निकट गुरुमहाराजने उस लीलादर्शनकी कथा प्रकाशित की। क्या हमारे निकट वह बात बोलते?

'हमें भी सुन्दर वस्त्र पहनाओ'

पुरीधाममें श्रीनीलाचल गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके समयकी घटना है। तब मैं उस मठमें सेवकके रूपमें था। विग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सवके लिए उस समय मठमें समितिके समस्त संन्यासी, बहुत ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्त उपस्थित हुए थे। श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके पूर्व दिन निशान्तके समय श्रील गुरुमहाराजने स्वप्नमें टोटा-गोपीनाथजीके श्रीविग्रहोंका दर्शन किया। उन्होंने गुरुमहाराजको अपने जीर्ण वस्त्र दिखाये और कहा—'हमें भी सुन्दर वस्त्र पहनाओ।' प्रातःकाल मङ्गलारतिके बाद श्रील गुरुमहाराजने पूज्यपाद नारायण महाराजको गोपनमें उस स्वप्नकी बात बतायी। उन दोनोंने ही तुरन्त टोटा गोपीनाथजीके दर्शनके लिए जानेका निश्चय किया। गुरुमहाराजने अपने सेवक गोपीकान्त प्रभुसे पुरी मठके ठाकुरजीके लिए जो नये-नये वस्त्र प्रस्तुत हुए थे, उनमेंसे दो-तीन जोड़ी पोशाक साथमें लेनेके लिए कहा। अन्ततः गुरुमहाराज और श्रील नारायण महाराज टोटा-गोपीनाथ मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने पुजारीजीको वे सब नयी पोशाक देकर श्रीविग्रहोंको पहनानेके लिए कहा। पुजारीने शीघ्र ही ठाकुरजीका शृङ्गार किया। गुरुमहाराजके आग्रह पर पुजारीजीने ठाकुरजीके व्यवहृत पुराने पोशाकको दिखाया। उस पोशाकको देखकर गुरुमहाराज एवं श्रील नारायण महाराज अश्रु रोक नहीं सके। पुजारीजीने बताया—'मन्दिरकी आय अच्छी नहीं है, हम खूब कष्टसे गुजारा कर रहे हैं। वस्त्र सब जीर्ण हो गये हैं, चूहोंका भी उत्पात है... इत्यादि।' टोटा-गोपीनाथजीको नूतन वस्त्र धारण किये हुए दर्शनकर गुरुमहाराज और श्रील नारायण गोस्वामी महाराज अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अनेक स्तव-स्तुतिकर तथा कुछ प्रणामी देकर प्रणामकर मठमें लौट आये। उसके बाद विग्रह प्रतिष्ठा, महोत्सव आदि समाप्त होनेपर सायंकाल

श्रीमद्भागवतका पाठ हुआ। उसमें परम पूजनीय सन्त गोस्वामी महाराज, परमाराध्य गुरुमहाराज, पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज, पूज्यपाद पर्यटक महाराज आदि अनेक त्रिदण्डी, बहुत ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्त उपस्थित थे। गुरुमहाराजने विग्रहतत्त्वके सम्बन्धमें बोलते समय टोटा-गोपीनाथके स्वप्नकी पूरी घटना कह सुनायी। सुनकर सभी लोग अवाक् हो गये।

यह दोष भगवान् नहीं बताते

उस समय श्रील गुरुमहाराज शेवड़ाफुलिके श्रीमाधवजी गौड़ीय मठमें थे। मैं कोलकाताके विनोदविहारी मठमें था। समाचार मिला कि गुरुमहाराज शेवड़ाफुलिसे श्रीधाम नवद्वीप चले जायेंगे। एक गुरुबहनने विनोदविहारी मठमें आकर मुझसे जब यह समाचार पाया तो वह शेवड़ाफुलि जाकर गुरुमहाराजके दर्शनके लिए अधीर हो उठी। घरमें जाकर वह जल्दी-जल्दीसे ठाकुरजीको भोग निवेदनकर शेवड़ाफुलिके श्रीमाधवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हो गयी। तब गुरुमहाराज प्रसाद पा रहे थे। वह गुरुबहन गुरुमहाराजकी भजनकुटीके द्वारके सामने खड़ी होकर रोने लगी। उसे देखकर श्रील गुरुमहाराजने कहा—'अरी पगली, तूने भोग निवेदन किया, पर जलका ग्लास नहीं दिया, आचमन नहीं दिया, और ऐसे ही यहाँ चली आयी?' तब वह गुरुबहन उच्चस्वरसे क्रन्दन करते-करते कहने लगी—'गुरुमहाराज, मेरा अपराध हो गया है। मैंने सुना कि आप नवद्वीप चले जायेंगे, अब अनेक दिनों तक आपका दर्शन नहीं मिलेगा, इसलिए जल्दबाजीमें आते हुए ये सब भूल कर बैठी, आप क्षमा करें गुरुमहाराज।' भोग-निवेदनमें जो दोष हुआ था, वह गुरुमहाराजके निकट आनेपर साक्षात् रूपसे ज्ञात हुआ, यह दोष भगवान् नहीं बताते। इस घटनासे यह स्पष्ट होता है कि अर्चन, भोग-निवेदन आदि क्रियाएँ कोई अनुष्ठान मात्र ही नहीं हैं—अत्यन्त वास्तव हैं—भगवान् और उनके निजजन सभी उसे साक्षात् रूपसे ग्रहण करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

गधा कहीं का

एक दिन कोलकाता मठमें श्रील गुरुमहाराजने मुझसे पूछा—'कितना हरिनाम करता है?' मैंने कहा—'थोड़ा-थोड़ा करता हूँ, अगले जन्ममें अच्छी तरह निष्ठाके साथ करूँगा।' श्रील गुरुमहाराजने कहा—'गधा कहीं का, फिर जन्म लेगा? ब्रह्मा क्या कह रहे हैं—

ये मानवा विगत-राग-परावरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन तेन हत किल्विषवेदनास्ते
मातुः पयोधररसं न पुनः पिवन्ति॥

जो 'परावरज्ञ' हुए हैं, अर्थात् किससे अच्छा होता है, किससे बुरा, ये सब जो जान सके हैं, वे संसारके प्रति कोई आसक्ति न रखकर देवगुरु नारायणका नाम सदा ही स्मरण करते हैं। उस स्मरणके द्वारा ही वे पाप-यन्त्रणासे मुक्त हो जाते हैं एवं उन्हें पुनः माँका दूध पीना नहीं पड़ता अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता। यह संसार दुःखमय है, इसी जन्ममें ही उद्धार होना है। श्रील प्रभुपादने कहा है—अन्याभिलाषिता शून्य होकर, ज्ञान-कर्मका अभ्यास छोड़कर, निष्कपट सरलताके साथ यदि कोई कृष्णानुशीलन करते हैं, तो एक ही जन्ममें उद्धार हो जाएगा, द्वितीय बार जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ेगा। अगला जन्मग्रहण करनेकी चिन्ता क्यों मनमें आती है? तब तो, साधनभजनमें शिथिलता आ जाएगी।

—श्रीनिताइचैतन्य दास ब्रह्मचारी

पिताकी ओरसे पुत्रके लिए एक उपहार

सन् १९७९ई॰ के सितम्बर मासमें दयामय श्रील गुरुमहाराज अन्यान्य वैष्णवोंके साथ हमारे उद्धारके लिए हमारे घर, गौरीपुर आसाममें, चार दिनके लिए आए थे। *"वैष्णवेर स्वभाव हय तारिते पामर। निज कार्य नाइ, तबु जान पर घर॥"* गुरुमहाराजने गौरीपुरके श्रीश्यामसुन्दर-मन्दिर एवं विभिन्न स्थानोंपर प्रचार किया। तृतीय दिन मध्यरात्रिमें मूसलाधार वर्षा होने लगी। बाँसोंके ऊपर मिट्टीका प्लास्टर देकर तैयार किये हुए हमारे घरमें मात्र दो कक्ष ही थे। प्रचुर वर्षा होते देखकर मेरे पति सुबल-प्रभु, जिस कक्षमें गुरुमहाराज ठहरे थे, उस कक्षकी ओर भागकर गये यह देखनेके लिए कि वे कैसे हैं। उन्होंने वहाँ जाकर देखा—गुरुमहाराज खाटपर बैठकर हरिनाम जप कर रहे थे और सुन्दरानन्द प्रभु उनके सिरपर छाता लेकर खड़े थे। गुरुमहाराजको ऐसी अवस्थामें देखकर मेरे पति रोने लग और इस प्रकारके दुर्भाग्यके लिए क्षमा माँगने लगे। तब गुरुमहाराज मधुर-मन्द मुस्कानके साथ बोले—"तुम क्यों इस मध्य-रात्रिमें यहाँ आये हो? मैं तो आनन्दपूर्वक यहाँ हरिनाम कर रहा हूँ। और यह परिस्थिति तो मुझे बहुत अच्छी लग रही है, अतएव तुम्हारा दुःखी होना उचित नहीं है। चिन्ता मत करो—जगत्के नाथ श्रीजगन्नाथ अपना घर स्वयं ही तैयार कर लेंगे। तुम जाकर विश्राम करो।"

चतुर्थ दिन विदायी लेनेसे पहले श्रील गुरुमहाराजने सुबलप्रभुसे एकान्तमें पूछा—"तुम्हारी क्या समस्या है?" सुबलप्रभुने कहा—"गुरुदेव! मेरी कोई समस्या नहीं है।" किन्तु गुरुमहाराजने अति स्नेहपूर्वक कहा—"मैं तुम्हारे पिताके समान हूँ। अतः पितासे कुछ भी गोपन नहीं करना चाहिए।" तब सुबलप्रभुने कहा—"गुरुदेव! बहुत आर्थिक सङ्कट चल रहा है, इसीलिए काबुलिवालेसे ब्याजपर तीन हजार रुपये उधार लेनेकी बात सोच रहा हूँ।" यह सुनकर गुरुमहाराज बोले—"मैं नवद्वीप जाकर तुम्हारे लिए तीन हजार रुपये 'मनीआर्डर' कर दूँगा—किन्तु काबुलिवालेसे रुपये उधार मत लेना।"

एक महिनेके बाद श्रील गुरुमहाराजने एक पत्रके साथ सुबलप्रभुके लिए तीन हजार रुपये भेज दिये। उस पत्रमें लिखा था—"ये रुपये सुबलको चिरकालके लिए दिये जाते हैं। पिताकी ओरसे पुत्रके लिए यह एक उपहार है।"

—स्मृति दासी

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-जयतः

श्रील गुरुदेवकी अप्राकृत गुणावली

मैं सर्वप्रथम अपने परमाराध्यतम् गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज एवं अभिन्न गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज तथा नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके श्रीचरणकमलोंमें असंख्य कोटि दण्डवत प्रणाम ज्ञापन करता हूँ।

श्रील गुरुदेवके शतवार्षिकी आविर्भावके उपलक्ष्यमें उनकी महिमाके विश्वव्यापी शङ्खनादने जो अत्यन्त व्यापक ध्वनि की है, वह निरन्तर परिवर्द्धित होकर भक्तवृन्दके हृदयमें अपूर्व बल एवं आनन्दका सञ्चार कर रही है। उनकी महिमाका यह विश्वव्यापी शङ्खनाद वाचिक, लिखित, कायिक, मानसिक आदि विभिन्न रूपोंमें प्रसारित होकर—'कीर्त्तिर्यस्य स जीवति'—इस विचारको सार्थकता प्रदान कर रहा है।

श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग पार्षदप्रवर श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजने श्रीगुरुकी आविर्भाव-तिथि पालनके विषयमें कहा है—

यदि कोई कहे कि इस प्रपञ्चमें दुर्लभ मानव जन्म प्राप्त करके हमारा सर्वोत्तम-सर्वप्रथम कर्त्तव्य क्या है? तो इसका उत्तर है—श्रीगुरुकी आविर्भाव-तिथिकी आराधना ही हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। परम-मङ्गलके आकर विग्रह श्रीगुरुपादपद्म हमारी ईश्वर-वैमुख्य व्याधिको दूर करके भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवामें अधिकार प्रदान करनेके लिये आविर्भूत होते हैं, अतः इस अनन्त-मङ्गलका मूल-उत्स (स्रोत) है—श्रीगुरुकी आविर्भाव-तिथि। उस अनन्त बलके मूल-उत्सके प्रकाश क्षणकी आराधना प्रणाली भी हम गुरु-वैष्णवोंकी कृपासे ही जान सकते हैं। वह श्रीगुरु-परम्परासे प्राप्त व्यासपूजाकी तिथिके रूपमें जगतमें प्रकटित है। जगद्गुरु श्रीव्याससे अभिन्न श्रीगुरुपादपद्मकी पूजासे ही श्रीगुरु-परम्पराकी आराधना युगपत सम्पन्न होती है।

यद्यपि 'अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर' अर्थात् प्राकृत इन्द्रियाँ अप्राकृत वस्तुका अनुसन्धान प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, इस विचारानुसार श्रीगुरुपादपद्मकी अप्राकृत गुणावली एवं महिमाका प्राकृत इन्द्रियोंसे वर्णन सर्वथा असम्भव है, तथापि श्रीबृहद्भागवतामृत (१/५/३१) में कथित श्रीनारदजीके निम्नोक्त वचन इस विषयमें प्रेरणा प्रदान करनेके लिये पर्याप्त हैं—

रसने ते महद्भाग्यमेतदेव यदीहितम्।
किञ्चिदुच्चारयैवेषां तत् प्रियाणां स्वशक्तितः॥

अर्थात् अरी मेरी रसने! यदि तुम प्रभुके इन प्रियभक्तोंकी किञ्चित् मात्र महिमा भी अपनी शक्तिके अनुसार वर्णन कर सको, तो मैं उसे तुम्हारा सौभाग्य ही समझूँगा।

उक्त श्लोक की टीकामें श्रीसनातन गोस्वामी पादने लिखा है—अपनी असमर्थतावशतः उस वर्णनमें त्रुटि रहनेकी सम्भावना है और उससे अपराध होना भी सम्भव है; किन्तु वह अपराध दीनवत्सल भक्तोंके लिये क्षमायोग्य है अर्थात् वह उस अपराधको क्षमा कर देते हैं, अतएव भक्तोंका माहात्म्य वर्णन करना ही कर्त्तव्य है। इसका गूढ़ अभिप्राय यह है कि—'अत्र च श्रीमद्भक्तानां माहात्मयवर्णनमेव श्रीभगवतो माहात्म्यवर्णनं परमिति'—अर्थात् भगवान्के माहात्म्यका वर्णन करनेकी तुलनामें भगवान्के भक्तोंका माहात्म्य वर्णन करना अधिक श्रेष्ठ है।

'गुण-वैशिष्ट्य-कुसुम-चयनिका'

'अनन्त गुण श्रीगुरुदेवेर के करिबे लेखा' अर्थात् श्रीगुरुपादपद्मके अनन्त गुणोंका वर्णन भला कौन कर सकता है? तथापि निम्नोक्त 'गुण-वैशिष्ट्य-कुसुम-चयनिका' श्रीगुरुपादपद्मकी प्रसन्नता रूपी पारितोषिक की आशासे समर्पित एक क्षुद्र प्रयासमात्र है।

हे श्रीगुरुदेव आपके—अप्राकृत भगवद्-अनुराग! अपने आराध्य गुरुवर्गके सङ्ग एवं सेवाकी विरहमय स्पृहा! शास्त्र-अनुशीलनमें अप्राकृत रुचि! वैष्णव-सेवोन्मुखता रूपी आदर्श! भगवद्धाम् तथा तदीय वस्तु गङ्गा-यमुना आदिके प्रति विशेष अनुरक्ति एवं प्राकृत विषयोंके प्रति सम्पूर्ण विरक्ति! दायित्वपूर्ण जीवन! विस्तारवादी विचार! सतीर्थ गुरुभ्राताओंके प्रति अकृत्रिम स्नेह! गौड़ीय गुरुवर्गके प्रति अति अद्भुत अप्राकृत दृष्टिकोण! श्रीगुरुचरणोंमें सम्पूर्ण शरणागति! श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवाके उद्देश्यसे प्राण सहित सर्वस्व अर्पणयुक्त भावनासे परिपूर्ण मनोवृत्ति! क्षमाशील एवं मिलनसार व्यवहार! श्रीरूप-रघुनाथके भजन आदर्शका आचारमय-प्रचार! हरिकथाके कीर्त्तनमें अक्लान्त उत्साह! जीवमात्रके पारमार्थिक मङ्गलके लिये सतत् चेष्टा! विशुद्ध भजनके लिये सदैव उत्साह दान! श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादका मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेके लिये दृढ़-सङ्कल्पता! श्रीगौरवाणीके विश्वव्यापी प्रचार-प्रसारके लिये सेवामय अथक परिश्रम! श्रीगौर-कृष्ण नाम-धाम-कामके वैभव एवं विभिन्न भाषाओंमें श्रीगौड़ीय-साहित्यके संवर्द्धनकी दिशामें अति-प्रशंसनीय अवदान! व्रजकी विभिन्न लीला-स्थलियोंके जीर्णोद्धारमें विशेष सहयोग! वैष्णव मर्यादा एवं व्यवहारमें सुप्रतिष्ठित व्यक्तित्व! श्रीमद्भागवतमें कथित—'परमो निर्मत्सराणां सतां'—विचारसे सुसम्पन्न आदर्शमय चरित्र! असीमित उदारता! गौड़ीय विधि-विधानमें विशेष पारङ्गता! नित्य-स्मरणीय भजन-परिपाटी! गुणग्राही एवं अदोषदर्शी प्रवृत्ति! सहज-सरल-सौम्य स्वभाव! श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवर्त्तित एवं अनुमोदित गौड़ीय विचारधाराके वैशिष्ट्यका संरक्षण सहित बोधगम्य परिवेषण तथा उनके अनुगतजनोंके प्रति अखण्ड गुरुबुद्धि! श्रीसरस्वती परिवार-आश्रित भक्तमात्रके प्रति ममतामय-अपनत्वका भाव! श्रील परम गुरुदेवके संस्थान एवं विचारोंकी शोभा-विस्तारके पक्षमें साफल्यमय-अकल्पनीय प्रयत्न एवं उनके द्वारा प्रदत्त दायित्वोंका स्तुति-योग्य निर्वाह! सम्प्रदायकी रक्षा एवं विचारधाराके आचार-प्रचारमें सदैव तत्परता! वास्तव सत्यका परिवेषण करनेमें देश-काल-पात्रकी अपेक्षा रहित परम निर्भिकता! कृष्णकथा रूपी महाप्रसादके वितरणमें उदार-चित्त एवं कृष्ण-अधरामृत रूपी महाप्रसादके वितरणमें उदार-हस्त! श्रीमद्भागवत रूपी वेदोंके गलित फल एवं तद्-अभिन्न ग्रन्थोंके आस्वादनमें अति निमग्नता एवं भाव-वितरणमें अति निपुणता! 'जीवन निर्वाहि आनेर उद्वेग ना दिबे। पर उपकारे निज सुख पासरिबें'—इस आदर्शमें निष्णात जीवन-शैली—आदि अशेष गुणोंसे

विमुग्ध होकर आपके आराध्य गुरुजन सदैव आपके प्रति सुप्रसन्न रहते हैं एवं आश्रितजन सदैव आपके प्रति अनुरक्त रहते हैं।

हे युगधर्मके प्रतिपालक! आप 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित एवं विश्वव्यापी असंख्य आश्रितजनोंके द्वारा आराधित होनेपर भी, श्रील प्रभुपादके द्वारा कथित भक्तिराज्यकी सर्वोत्तम योग्यता—'तृणादपि-सुनीचता' नामक आदर्शमें सुप्रतिष्ठित चरित्र-सम्पन्न हैं।

हे रूपानुग-विचारधाराकी विजयश्रीके विशिष्ट्-उद्घोषक! 'श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टका पुनः-संस्थापन ही हमारे आचार-प्रचारका मूल उद्देश्य है—श्रील प्रभुपादकी इस आन्तरिक इच्छाको पूर्ण करनेके कारण आप साधुजनोंके द्वारा विशेष समादृत हैं!

हे गौड़ीय गगनके अतिविशिष्ट्-नक्षत्र! आप श्रीवामन-त्रिविक्रम अभिन्न-विग्रह! श्रीकेशव-प्रियवर! श्रीसरस्वती मनोऽभीष्ट-पूरक! श्रीगौरकिशोरके भजन-निर्वाहक! श्रीविनोदधाराके पोषक! श्रीजगन्नाथके आदर्श-धारक! श्रीविद्याभूषण रूपी भूषणकी शोभा-विस्तारक! श्रीविश्वनाथके विचार-वैशिष्ट्यके विश्व-प्रचारक! श्रीनरोत्तमके उत्तम भाव-विलासक! श्रीकविराजके कवित्वके सौन्दर्य-प्रकाशक हैं।

हे षड्गोस्वामिवर्गके भजनमूलक वैशिष्ट्यके प्रवाहक! श्रीसनातन गोस्वामीका सम्बन्धमूलक-वैशिष्ट्य, श्रीरूप गोस्वामीका अभिधेयमूलक-वैशिष्ट्य, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीका प्रयोजनमूलक-वैशिष्ट्य, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामीका भागवतमूलक-वैशिष्ट्य, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीका विधिमूलक-वैशिष्ट्य, श्रीजीव गोस्वामीका सिद्धान्तमूलक-वैशिष्ट्य—आपके भजन-आदर्शमें सदैव सुदीप्त एवं प्रवाहित है।

हे श्रीगौरगोष्ठीके अन्तरङ्ग सभासद! आप सम्पूर्ण विश्वमें श्रीगौरवाणीके यथार्थ तात्पर्यके अद्वितीय प्रचारक एवं श्रीगौरप्रेमके विशिष्ट तथा मुक्तहस्त वितरक होनेपर भी अमानी-मानद धर्मकी प्रतिमूर्त्ति स्वरूप हैं!

हे सदा व्रजभाव-विभावित-हृदय! आप गणमान्य व्रजवासियोंकी विशिष्ट प्रीति एवं आदरके महामान्य-सुपात्र हैं! आपके श्रीमुखकमलसे निःसृत अमृतमयी कृष्णकथाका अप्रतिहत-प्रवाह श्रीव्रजगोपियोंके—'तवकथामृतं तप्त जीवनं'—आदि वचनोंकी नित्यताको निरन्तर पुष्ट करता है!

हे श्रीराधा-चरण-पीयूष पानरत! अपनी आराध्या श्रीमती राधिकाकी प्रेमसेवाकी सर्वोत्तमताके विश्वव्यापी प्रचारके कारण आप स्वयं श्रीमती राधिकाके द्वारा वृन्दावन स्थित सेवाकुञ्जमें सेवारत अपने सेवकोंके माध्यमसे विघोषित महिमायुक्त हैं!

हे कृपासागर-करुणासमुद्र-दयार्णव! हे भक्तवत्सल-दीनवत्सल! हेमहिमामय-गरिमामय! हेव्रजभावक-गुणग्राहक! हे सिद्धान्त-मार्त्तण्ड—रस-सुधाकर! हे सुजन-वन्दित—दुर्जन-उद्धारक! आपकी पारावार-शून्य अप्राकृत-गुणावलीसे विमोहित एवं अवदानसे कृतार्थ होकर विश्वव्यापी भक्तवृन्द आपकी महिमाके तुमुल-शङ्खनादमें निमग्न हैं।

श्रीगोलोक-वृन्दावनके माधुर्यमय प्रकोष्ठमें श्रीविनोद-नयन-कमल सहित श्रीरूप मञ्जरीके सेवा-कौशलकी शोभा-वर्द्धनमें निरन्तर नियुक्त रहकर अपनी आराध्या श्रीमती राधिका सहित राधानाथको आनन्द-सागरमें निमज्जित करना ही आपका विशेष परिचय है एवं औदार्यमय प्रकोष्ठमें श्रीगौराङ्गके अन्तरङ्ग भावोंमें निमग्न होकर उनकी सङ्कीर्त्तन-विलास लीलाका रसास्वादन तथा भावमय सेवन ही आपका नित्य-कृत्य है, उक्त श्रीगोलोक-वृन्दावनके माधुर्यमय एवं औदार्यमय—दोनों प्रकोष्ठकी सेवा-सम्पद प्रदान करनेके लिये ही आपका मायिक जगतमें अवतरण है। आपके अपरीमित अवदान एवं निरन्तर वर्द्धित होनेवाली अप्राकृत गुणावलीके प्रति मैं शत-शत नमन ज्ञापन करता हूँ। हे 'भक्तबान्धव' आपकी जय हो! जय हो! जय हो!

नित्यसेवाभिलाषी
सञ्जय दास

● हमने भगवान्‌की बहुत भक्ति की, किन्तु गुरुकी भक्ति नहीं की, पुनः गुरुकी भक्ति की परन्तु हमने सतीर्थगणों (गुरु-भ्राताओं) की अवहेलना, अवज्ञा की, उनका असम्मान किया, उपेक्षा की—वैसा करनेपर क्या हमारी गुरु-सेवा, कृष्णसेवा हुई?—नहीं होगी। हम यदि वैष्णवोंका सम्मान नहीं कर पाते, सतीर्थगणोंको सम्मान नहीं दे पाते, तब तो हमारा साधन-भजन बहुत दूर है।

—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2022-2024
DATE OF PUBLICATION - 18 MARCH 2022

–मैं सदैव तुम्हारे निकट बैठ नहीं सकता। पुनः आलेख्य (चित्रपट)के रूपमें तुम्हारे सामने हूँ। उसके निकट ही तुम्हारे जाननेका विषय जान लेना। उस अर्चा–आलेख्यके निकट ही समस्त विषय निवेदन करने पर तुम मनमें शान्ति प्राप्त करोगे।

–तुम्हारे समस्त दुःखोंकी बात सरल रूपसे बिना किसी संकोचके मुझे बता देना। तब तुम्हारा भारी हृदय हल्का हो जाएगा और तुम निश्चिन्त होकर श्रीनाम ग्रहण कर पाओगे।

–मैं तुमसे दूर नहीं हूँ, पासमें ही रहता हूँ—यह जानना।

–श्रीगुरु–वैष्णवगणके अप्रकट होनेपर उनके उपदेश–निर्देशोंका अनुशीलन और पर्यालोचना करने पर उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापित होती है। इस प्रकार उनके साथ सम्पर्क करना सम्भव होता है।

–मेरा विशेष उपदेश और निर्देश है—सामान्य विषय और सोचको लेकर समय मत बिताना। सब समय साधन–भजनके उन्नततम वैशिष्ट्य और तत्त्वसिद्धान्तोंको लेकर चर्चा और अनुशीलन करना।

—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज